प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५६
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से हमारा देश बहुत ही समृद्ध है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्दमहासागर तक और पूर्व में बंगाल की खाडी से लेकर पश्चिम में अरबसागर तक, सैकड़ो ऐसे स्थल विद्यमान है,जिन्हें देखने के लिए देश के कोने-कोने से असंख्य लोग आते है। हिमालय के सौंदर्य का तो कहना ही क्या! उसके दर्शन के लिए तो दुनिया भर के प्रकृति-प्रेमी पर्यटक हजारों मील की यात्रा करके आते है।

पाठक जानते है कि हिमालय में काश्मीर का अपना स्थान है। उसका सौंदर्य जगद्विख्यात है। वहा के पर्वत, वहां की वनश्री, वहा की झीलें, वहां के प्रपात और वहा का स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु, जाने कहां-कहा से खीच कर यात्रियो को वहां ले आते हैं। उसकी इस अतुलनीय और अनन्त प्राकृतिक सुषमा को देखकर ही किसी प्राचीन कवि ने कहा था कि अगर इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह काश्मीर में है।

विगत सितम्बर में लेखक ने काश्मीर-स्थित अमरनाथ की यात्रा की थी। इस यात्रा का प्रकृति-प्रेमियों के लिए तो महत्त्व है ही, धार्मिक दृष्टि से भी इसकी बडी मानता है। रास्ते की दुर्गमता तथा भयकरता की चिन्ता न करके सैकडो-हजारो नर-नारी प्रतिवर्ष इस महान तीर्थ की यात्रा करते है और अमरनाथ के दर्शन कर जीवन की धन्यता अनुभव करते है। प्रकृति-प्रेमियों को तो इतनी सामग्री मिलती है कि अन्यत्र शायद ही मिले। वहा के अद्‌भुत दृश्यो को देखकर कोई भी सजीव व्यक्ति मुग्ध हुए विना नही रह सकता।

प्रस्तुत पुस्तक में अमरनाथ की यात्रा का वड़ा ही विशद और रोचक वर्णन है। यात्रियो की सुविधा के लिए इसमें यात्रा-विषयक प्राय: सभी आवश्यक जानकारी दे दी गई है। इसे पढकर यात्रा का चित्र आखो के सामने घूम जाता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो हम स्वयं उस तीर्थ की यात्रा कर रहे है।

ऐसे महान् तीर्थ पर कोई भी सुन्दर एवं प्रामाणिक पुस्तक का उपलब्ध न होना वास्तव में बडे विस्मय की बात थी। हर्ष है कि इस पुस्तक द्वारा उस अभाव की पूर्ति हो रही है। सामग्री के साथ-साथ छपाई-सफाई की ओर भी विशेष ध्यान रक्खा गया है और पुस्तक की उपयोगिता बढाने के लिए लगभग ढाई दर्जन चुने हुए बढ़िया चित्र भी दिये गए हैं।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर बहुत-से पाठकों को अमरनाथ जाने की प्रेरणा मिलेगी। इतना ही नहीं, जाने से पूर्व ही उन्हें यात्रा का आनन्द और तीर्थ-दर्शन का लाभ मिल जायगा।

पुस्तक अधिक-से-अधिक हाथो में पहुंचे और कम पढ़े-लिखे लोग भी इससे फायदा उठा सकें, इस विचार से इसे मोटे टाइप में छापा गया है और इसका मूल्य भी कम रक्खा गया है।

दूसरा संस्करण

हमें हर्ष है कि पुस्तक का दूसरा संस्करण कुछ ही महीनों में निकल रहा है। स्पष्ट है कि पुस्तक पाठकों को पसंद आई है। आशा है, यह संस्करण भी शीघ्र ही खप जायगा।

—मंत्री

दो शब्द

अमरनाथ का नाम बहुत दिनों से सुन रखा था; पर साथ ही यह भी पता चला था कि वहां की यात्रा बडी कठिन है और साल के कुछ ही दिनों में होती है। जब हम श्रीनगर पहुंचे और वहां की यात्रा का विचार हुआ तो मैंने सोचा कि अमरनाथ-संबंधी जो भी साहित्य उपलब्ध हो, देख लेना चाहिए। सबसे पहले विजिटर्स ब्यूरो पहुंचा। वहां डाइरेक्टर महोदय के दफ्तर में जाकर पूछा तो पता चला कि अमरनाथ पर कोई भी स्वतंत्र पुस्तक नहीं निकली है। उन्होंने दो-तीन फोल्डर दिये, जिनमें से एक में अमरनाथ का मामूली-सा वर्णन था। भारत सरकार के टूरिस्ट इन्फार्मेशन आफिस गया, वहां भी कुछ न मिला। बडा आश्चर्य हुआ। जिस स्थान की यात्रा के लिए देश के कोने-कोने से हजारों नर-नारी आते हैं, और सैकड़ों विदेशी पर्यटक जिसे देखकर हैरत में रह जाते हैं, उसके बारे में कोई साहित्य नहीं!

ब्यूरो से लौटकर बाजार में चक्कर लगाया। किताबों की सारी दुकानें देख डालीं; लेकिन अमरनाथ पर कोई भी स्वतंत्र पुस्तक न मिली। काश्मीर पर कई पुस्तकें हिन्दी-अंग्रेजी में थीं, लेकिन उनमें अमरनाथ पर एक छोटा-सा अध्याय था। किसी-किसी में वह भी नहीं। किसी अन्य अध्याय के साथ उसका नाममात्र का वर्णन था। एक छोटी-सी पुस्तक अमरनाथ पर हिन्दी में मिली, लेकिन उसमें अमरनाथ के धार्मिक रूप को अधिक महत्व दिया गया था। वैसे भी वह बहुत पुराना प्रकाशन था। कागज, छपाई आदि सब असंतोषजनक, चित्र केवल एक, वह भी अस्पष्ट। दिल में बात बड़ी चुभी।

ब्यूरो में अधिकारी महोदय से बात हुई थी। अमरनाथ-संबंधी साहित्य के अभाव पर खेद प्रकट करते हुए जब मैंने उनसे कहा कि मैं उस पर एक पुस्तक लिखने का विचार कर रहा हूं तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने कहा, "अवश्य लिखिये। हम लोगों को उससे बड़ा लाभ पहुंचेगा।"

नेहरूजी ने अपने काश्मीर-प्रवास की स्मृतियों में लिखा है, "मुझे

काश्मीर का परिचय करानेवाली पुस्तकें नही मिल सकी। काश्मीर के रास्तो के कुछ विवरण मिलते है, लेकिन वे इतने भद्दे और गदे छपे है कि उन्हें देखने को भी जी नहीं करता। इस वक्त भी शायद वही किताबें चलती है, जो एक पीढी पहले की लिखी हुई है। भ्रमणार्थी विभाग को सबसे पहले घाटियों के ऊपर या इधर-उधर आने-जाने के रास्तो के बारे में पूरी जान-कारी देनेवाली सस्ती पुस्तकें निकालनी चाहिए।"

अमरनाथ जाने से पहले यात्रा का पूरा चित्र मन में नही था। जो भी थोडा-बहुत साहित्य मिला था, उसे पढकर अनुमान हुआ था कि रास्ता बड़ा कठिन है, पर सुन्दर भी कम नही है। लेकिन जब वहां की यात्रा की और सारी चीजो को स्वयं देखा तो आखें खुल गई। पढे वर्णन बहुत फीके और अपूर्ण लगे। पुस्तक लिखने का विचार और मजबूत हुआ।

लौटते ए रास्ते में जब मैंने साथियो से इस विषय में चर्चा की तो उन्होने उसका उत्साहपूर्वक स्वागत किया।

काश्मीर-प्रवास से दिल्ली लौटे तो बेहद थके थे और एक मास की अनुपस्थिति में काम भी बहुत इकट्ठा हो गया था। ध्यान उधर गया तो अमरनाथ की यात्रा की ताजगी मन से दूर-सी होने लगी। मेरे मित्र और यात्रा के साथी भाई विट्ठलदास मोदी के पत्र-पर-पत्र आ रहे थे कि सब काम छोड़कर पहले अमरनाथवाली पुस्तक लिख डालिये। देर हो जायगी तो उसमे वह सजीवता नही आ पायगी, जो अब लिख-ने में आवेगी। इधर मेरी पत्नी का भी आग्रह रोज होता था। यात्रा में मैंने बहुत-से चित्र लिये थे। उन्हें जब अपने मित्रों और संबंधियों को दिखाता तो यात्रा की स्मृति सहज ताजी हो जाती थी और वहा के सारे दृश्य आंखों के आगे घम जाते थे। यात्रा करते समय मन में परिस्थितिवश जैसी द्विविधा हुई थी, वैसी ही पुस्तक लिखने में हुई; पर जब संकल्प किया और लिखने बैठा तो पुस्तक पूरी हो गई। इसे लिखवाने का श्रेय भाई विट्ठलजी और मेरी पत्नी को है।

पीछे मुड़कर देखता हूं तो जो यात्रा उस समय बडी कठिन प्रतीत हुई

थी, आज वह वडी सजीव और आनन्दप्रद जान पडती है। कह नही सकता कि इन पृष्ठो मे उसका वर्णन उतना सजीव और रोचक हो सका हैं या नही, पर अपनी ओर से मैंने प्रयत्न किया है कि जहातक हो सके, पाठको को हमारे आनन्द का कुछ अश मिल जाय और वे घर-बैठे उस यात्रा की कुछ झाकिया ले लें। उपयोगिता की दृष्टि से पुस्तक में सभी आवश्यक जानकारियां दे दी गई हैं। कम पढ़े-लिखे यात्री इससे लाभ उठा सकें, इसलिए इसे मोटे टाइप में छापा जा रहा हैं। चित्र भी काफी दिये गए हैं।

इन चित्रो में अधिकाश मेरे स्वयं के लिये हुए हैं। कुछ भाई श्री वि. य. घोरपड़े के हैं और कुछ जम्मू और काश्मीर सरकार के सूचना-विभाग से मिले हैं। इसके लिए मैं इनका वहुत अनुगृहीत हूं।

अस्वस्थ होते हुए भी श्रद्धेय काकासाहव ने वहुत ही सुन्दर एव उपयोगी भूमिका लिख देने की कृपा की, तदर्थ मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

पुस्तक की तैयारी में मुझे जिन व्यक्तियो तथा पुस्तको से सहायता मिली है, उनका भी मैं ऋणी हूं। भाई विट्ठलजी, श्री जीतमलजी तथा श्री मार्तण्डजी की प्रेरणा के लिए कुछ कहू तो वह मात्र औपचारिक वात होगी। ये सव मेरे इतने निकट हैं कि कुछ कहकर मैं इनकी नाराजी का पात्र वनूगा।

यदि इस पुस्तक को पढकर पाठकों को आनन्द आया और अमरनाथ की यात्रा की प्रेरणा हुई तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूगा।

७/८, दरियागंज
दिल्ली।
१ जून, १९५५

यशपाल जैन

भव्य और दिव्य

तपस्या और काव्य परस्पर-विरोधी तत्त्व मालूम होते है। सूर्योदय और सूर्यास्त, उपवन और पुष्पवाटिका, आकाश के पक्षी और उनका गान, भव्यता और लालित्य, ये सब जीवन के आनन्द के विषय है। इनका आस्वाद लेने का मौका जब मिलता है, तब हम आनन्दविभोर होते है और एक तरह की संतोषजनक जीवन-समृद्धि का अनुभव भी करते है।

इसके विपरीत जब तपस्या का संकल्प करते है, तब हम उपवास, जागरण आदि देहदंड के प्रकार आजमाते है। इन्द्रियानन्द को भूलकर इन्द्रिय-निग्रह करते है। आखे मूद कर अन्तर्मुख होते है और विश्वतो दौड़ने वाले मन को एकाग्र करके ध्यानमग्न होते है। जैसे समस्या बढती है और हम तितिक्षावीर बनते है वैसे हम जीवन-शुद्धि का अनुभव करते है। काव्यानुभव से आनन्द-वृद्धि होती है। तपस्या तपने से सब तरह की शक्ति बढती जाती है।

हमारे भारतीय पूर्वजो ने जीवन-साधना के किसी सुभग क्षण में जीवन-शुद्धि और जीवन-समृद्धि का समन्वय करने का सोचा और वे पवित्र स्थानों की यात्रा करने निकल पडे।

शास्त्र कहते है कि यात्रा का मुख्य उद्देश्य कल्मषनाश और पुण्य-संचय है। आरामतलब और विलासी जीवन जीते हर तरह की शिथिलता आ जाती है, चारित्र्य-तेज क्षीण होता है, चित्त-वृत्ति प्रमादी बनती है और समाज-द्रोह टालने के प्रति जागरूक नही रहती है। ऐसी हालत में मन में जो थोडा कुछ खेद उठता है, उसे दबाने के लिए मनुष्य कुछ थोडा परोपकार करता है, अपने धन-संग्रह मे से कुछ दान करता है और मानता है कि हम निष्पाप हो गये। दान पानेवाले कृपण (कृपापात्र) लोकदाता की भरसक स्तुति करते है और फिर दाता भी मानने लगते है कि हम इस स्तुति के योग्य है और समाज के सच्चे कल्याण-कर्त्ता है।

वे नही जानते कि सच्चा धर्म, प्रधान धर्म दान नही, किन्तु त्याग है। समाजद्रोह करके धन इकट्ठा करना और उसमें से थोडा-सा विपद्-ग्रस्तों को देकर अपने को पुनीत मानना, यह अपनेको और समाज को धोखा देना है। सच्चा धर्म है समाज-सेवा के लिए इन्द्रिय-निग्रह करना, उद्योग-

परायण सादगी मे रहना और समूचे समाज के साथ अपनी एकता का अनुभव करना।

केवल मनुष्य-समाज के साथ ही नही—किन्तु सचराचर विश्व के साथ एकरूप हो जाना—यही है सच्चा जीवनानन्द। वेदान्त जिसे अद्वैतानन्द कहता है, वह यही विराट् जीवनानन्द है।

जो लोग इन्द्रियोपासक है, विषय-लोलुप है, आरामतलब है और स्वार्थी है, उनमें विश्वात्मैक्य का आनन्द लेने की शक्ति क्षीण होती है और वे मानवी संस्कृति को समृद्ध नही कर सकते।

अब हम आसानी से समझ सकेंगे कि आधुनिक 'टूरिस्ट' में और हमारे धर्मपरायण यात्रियो में क्या और कितना फर्क है। 'टूरिस्ट' भी विराट् का दर्शन करते है और यात्री भी। लेकिन दोनो का फल अलग है। विराट् के दर्शन से टूरिस्ट का क्षुद्र व्यक्तित्व रबर के फुग्गे के जैसा बढता जाता है और वह मानता है कि उसके व्यक्तित्व का विकास हुआ। धर्म-परायण यात्री जब विराट का दर्शन करता है तब तितिक्षा और कष्ट के द्वारा अपने व्यक्तित्व को शून्य करता है, विराट् का ध्यान करने की शक्ति कमाता है और विराट के साक्षात्कार में अपने व्यक्तित्व की आहुति दे देता है।

× × ×

जब मै जमनोत्री की यात्रा कर रहा था, तब किसी वृद्ध यात्रा-परायण साधु से सुना कि काश्मीर म अमरनाथ यात्रा का एक धाम है। ऊचे ऊचे पहाड लाघकर वहा जाना पडता है। चट्टान और बर्फ को छोडकर वहा कुछ भी नही है। घोडे पर सवार होकर गये तो घोडे के लिए घास भी साथ ले जाना पडता है। अगर खाना पकाना हो तो ईंधन भी साथ रखना पडता है। स्थान इतनी ऊचाई पर है कि वहा घटो पकाने पर भी चावल पकते ही नही। बरतन के ऊपर ढक्कन रखकर उसपर अगर एक बडे पत्थर का बोझा रख दिया तो कभी-कभी चावल पक जाते है।

साधु ने यह भी कहा कि अमरनाथ एक कुदरती गुफा है। उसके एक कोने में, आप-ही-आप, बरफ का एक लिंग बनता है। उसका चमत्कार यह है कि यह शिवलिंग धीरे-धीरे बढते, पूर्णिमा तक बडा होता है और कृष्ण पक्ष में अमावस्या तक पूरा गल जाता है। श्रावण-पूर्णिमा के दिन सैकडो

और हजारों लोग अमरनाथ के दर्शन करते हैं। उसी दिन वहांपर दो कबूतर आते हैं, जो सचमुच शिव-पार्वती हैं। पुण्यवान को ही इस कबूतर-जोड़े का दर्शन होता है।

वृद्ध साधुने इस यात्रा की मर्यादा भी कही कि आखिरी दिन पचतरणी के आगे की यात्रा जूते पहनकर नही करनी चाहिए, न उस पवित्र भूमि में मलमूत्र का विसर्जन ही करना चाहिए। मैंने पूछा, "नंगे पैर वर्फ में आदमी चल सकता है ?" उसने कहा, "जो सच्चा तपस्वी होता हैं वह नंगे पैर जाता हैं। मामूली लोग पांव को ऊनी कपडे के टुकडे से वाव लेते हैं। अमरनाथ की गुफा के पास एक छोटा-सा झरना गिरता है, जिसके नीचे, सव कपड़े उतारकर, नंगे होकर नहाने से सव पाप नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य वज्र-काय वनता है।"

मुझमें वैसा स्नान करने की श्रद्धा और तितिक्षा थी, लेकिन अनेक स्त्री-पुरुष-यात्रियो के देखते नगा होकर नहाने की हिम्मत नही थी। मेरे पास ऊनी कपड़े का छोटा-सा टुकड़ा था, उसे लपेट कर झरने के नीचे खडा हुआ, सिर पर वर्फ का पानी गिरते ही ऐसी वेदना हुई कि वहां से भाग ही जाता, लेकिन दूसरे ही क्षण सारा शरीर वधिर हो गया—सुख-दु ख से परे। जोरों से हाथ-पैर मल लिये और फिर से चादर ओढ ली। उन दिनों मैं सिर्फ धोती और चादर ओढ़कर ही रहता था और सिर पर एक मफलर। जिसमें दर्जी का काम है, ऐसे सिये हुए कपड़े न पहनने का मेरा व्रत था।

अमरनाथ की यात्रा हम भारतीयो के लिए एक धन्यता का विषय हैं। श्रीनगर से किश्ती में वैं कर अनंतनाग या खनवल तक जाने से एक अनोखा आनन्द मिलता हैं। रास्ते में अवन्तीपुर और वीजव्यारा महत्त्व के स्थान हैं। अनतनाग से अमरनाथ जाते रास्ते में इष्मकाम, पहलगाम, मार्तण्ड आदि स्थान महत्त्व के हैं। शेषनाग सरोवर दुनिया के अत्यत सुन्दर सरोवरो में से एक है। और अमरनाथ की गुफा मे वर्फ के वने हुए प्राकृतिक लिंग का दर्शन होता हैं। किन्तु भगवान के सच्चे दर्शन तो श्रद्धा-वन यात्रियो की आंखो में से टपकती धन्यता के द्वारा ही होते है।

मैंने अमरनाथ की यात्रा की, उसे चालीस वरस से अधिक समय हो गया। यात्रा का विवरण लिखने का विचार था, सो विचार ही रह गया।

अमरनाथ से लौटते जब लाहौर पहुँचा तब वहां अमरनाथ की हमारी यात्रा का उल्लेख पंडित सातवलेकरजी से किया। उन्होंने कहा, "मुझे भी यह यात्रा करनी है।" बाद में मैंने सुना कि उन्होंने अमरनाथ की यात्रा तो की ही, उसका वर्णन भी मराठी में प्रकाशित किया।

मैंने अपनी यात्रा का वर्णन नही लिखा, इसके विषाद के कारण भी उस यात्रा का स्मरण अनेक बार होता रहा। किसी से कर्जा लिया हो और पैसे वापस नही दे सके हो तो उस कर्जे का स्मरण जिस तरह होता रहता है वैसी ही आजतक हालत रही।

इसलिए जब मेरे मित्र यशपाल जैन से सुना कि वे अमरनाथ हो आये है और अपनी यात्रा का वर्णन प्रकाशित करनेवाले है, तब मैंने उत्कण्ठा से कहा, "आप जरूर अपनी यात्रा का वर्णन जल्द प्रकाशित कीजिये। मै उसे पढना चाहता हूं और अपने पुण्य-सस्मरण ताजे करना चाहता हूं।"

और जब प्रकाशक के धर्म का पालन करके उन्होंने मुझसे कहा कि "तब तो आपको उसकी भूमिका लिखनी पडेगी," तब मैंने जवाब दिया, "अवश्य। अमरनाथ के प्रति मेरा जो ऋण है, वह कुछ कम होगा।"

यशपालजी सिद्ध-हस्त लेखक है। साहित्य-सेवा के लिए ही उन्होंने अपना जीवन अर्पण किया है। 'सस्ता साहित्य मडल' के साथ उनका घनिष्ट सहयोग है। उनका लिखा हुआ 'जय अमरनाथ' पढते बड़ा आनन्द आया और मानो पूर्व जन्म के सस्कार फिर से जागृत हो गये। हमारे पूर्वज यात्रा का आनन्द लेते थे, लेकिन उसका वर्णन नही लिख सक्ते थे। उस कमी को दूर करने के लिए वे यात्रा का माहात्म्य लिखते थे। उसका कुछ नमूना इस पुस्तक के एक अध्याय में दिया है।

मै समझता हू कि हम लोगो को अब भारत की पुण्यभूमि के सब तीर्थ-स्थानों के वर्णन और माहात्म्य नए सिरे से लिखने चाहिए, जिसमें प्राकृतिक सौंदर्य का यथार्थ चित्रण हो, जगह-जगह की जनता के लोकाचार का वर्णन हो, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक बातो का उल्लेख हो और केवल पुण्य-प्राप्ति का लेखा न देते हुए, जीवन-शुद्धि और जीवन-समृद्धि का आध्यात्मिक साक्षात्कार हो।

नईदिल्ली, २ सितम्बर १९५५ —काका कालेलकर

विषय-सूची

जय अमरनाथ !

: १ :

दिल्ली से श्रीनगर

गर फिरदौस वर रूए जमींअस्त ।
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त ॥

अगर जमीन पर कही स्वर्ग है तो वह यही (काश्मीर में) है, यहीं है, यही है।

काश्मीर जाने की इच्छा वहुत दिनों से हो रही थी। उसके महान प्राकृतिक सौंदर्य, कला-कारीगरी तथा स्वास्थ्यप्रद जीवन के वारे मे मुद्दत से पढ़ता और सुनता आया था और अव जवकि राजनैतिक उतार-चढ़ावो ने उसे दुनिया के नक्शे पर सामने ला दिया था तो स्वभावत. हमारी दिलचस्पी उसमें और वढ़ गई थी, लेकिन इच्छा होने और अनेक वार प्रयत्न करने पर भी जाने का सुयोग न मिला। पिछले साल तो परमिट तक आ गये थे, लेकिन ऐन मौके पर जाना रुक गया। इस वर्ष सोचा कि कुछ भी हो, वहां अवश्य जाना है, सो विना अधिक सोचे तथा ठहरने आदि का खास प्रवंध किये ३ सितम्वर को चल पड़े। हमारी पार्टी मे कुल ८ जने थे। हिन्दी साहित्य मंदिर, अजमेर के संचालक श्री जीतमलजी लूणिया; श्री मार्तण्डजी उपाध्याय; उनकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवी; आरोग्य मंदिर, गोरखपुर के सचालक श्री विट्ठलदास मोदी; लेखक की पत्नी श्रीमती आदर्शकुमारी, पुत्री अन्नदा, चिरजीव सुधीर और लेखक। रात को दिल्ली से काश्मीर मेल द्वारा पठान-

कोट को रवाना हुए। गाड़ी चली तो सामान जचा कर आपस मे वाते करने लगे। वहुत दिनों की इच्छा पूरी हो रही थी, इससे सवको वड़ी खुशी थी, लेकिन काश्मीर की यह पहली यात्रा होने के कारण वहुत-सी आशंकाएं भी मन मे उठती थी। पठान-कोट सवेरे पहुंच जायंगे। फिर दो दिन वस का सफर करना होगा। किसी की तवीयत खराव हो गई तो ? श्रीनगर मे कहा ठहरेंगे ? यात्रा मे मार्गदर्शन कौन करेगा ? आदि-आदि वहुत-से प्रश्न मन मे उठते थे, लेकिन उनका समाधान कौन करता ?

रात भर का सफर था। थोड़ी देर चर्चा कर-करा कर सो गये। सवेरे आख खुली तो पठानकोट आने वाला था। पौने सात पर वहां पहुंचे। काश्मीर के लिए यही अन्तिम स्टेशन है। आगे कार या वस द्वारा जाना होता है। हवाई जहाज भी जाता है, पर जिन्हे काश्मीर की प्राकृतिक सुपमा के दर्शन करने है, उन्हे वस या कार से ही जाना चाहिए। समय अधिक अवश्य लगता है, पर यात्रा का असली आनद इसी मे आता है। पहले रेल जम्मू तक जाती थी, लेकिन भारत-विभाजन के वाद कुछ रास्ता पाकिस्तान मे चले जाने के कारण अव पठानकोट तक ही रह गई है। पठानकोट काफी वड़ी जगह है। वस्ती घनी और फैली है। लम्वा-चौड़ा वाजार है, जिसमे सव चीजे मिल जाती है।

सामान तुलवाने, नहाने-धोने, नाश्ता करने आदि मे करीव एक घंटा लग गया। ८-२० पर टूरिस्ट वस से रवाना हुए।

वस मे, देश के अलग-अलग भागों के २१ मुसाफिर थे। एक गुजराती-परिवार मोम्वासा (अफ्रीका) से आया था। श्रीनगर तक २६७ मील का रास्ता था, जो हम लोगों को वस के द्वारा तय करना था।

११ मील पर लखनपुर आया। वह भारत और काश्मीर की सीमा पर है। वहां हम लोगों के परमिट देखे गये और सामान जांचा गया। कोई एक घंटा लगा। फिर आगे वढ़े।

जम्मू तक का रास्ता बहुत मामूली है। ऐसा लगता है, मानो किसी मैदानी प्रदेश में चल रहे हैं। न ऊंचे पहाड़, न जगल। पठानकोट से जम्मू ६७ मील है। १२ बजे के लगभग पहुचे। जम्मू काश्मीर का एक वड़ा नगर है। शीतकाल मे काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से हटकर यही आ जाती है। उंचाई कुल १३०० फुट है। कई दर्शनीय स्थल हैं। रघुनाथजी का मदिर बड़ा विशाल है। उसे देखकर और बाजार मे एक चक्कर लगा कर आगे बढ़े।

अब मार्ग इतना सुन्दर था कि विना देखे उसकी कल्पना नही की जा सकती। उचाई ज्यो-ज्यो बढती गई, दृश्य एक-से-एक बढकर आते गये। संयोग से हमारी टोली मे वयोवृद्ध से लेकर महिलाए तथा बालक सब थे, पर ऐसा जान पड़ता था, मानो उत्साह ने आयु के अतर पर आवरण डालकर सबको एक पक्ति मे खड़ा कर दिया। बात-बात पर हम लोग अट्टहास कर उठते थे और प्रत्येक सुन्दर दृश्य को देखकर आनन्द से उछल पड़ते थे।

४२ मील पर ऊधमपुर आया वह महत्वपूर्ण सैनिक केन्द्र है। शाम को चार बजे हम लोग कुद पहुचे। उसकी उचाई ५७०० फुट है। बडी सुन्दर जगह है। चीड़ और देवदार के घने जगल है। जलवायु स्वास्थ्यप्रद है।

रात हम लोगों ने कुद से कुछ आगे बटोत में बिताई। यह स्थान कुद से थोड़ी निचाई पर है। ठहरने के लिए डाक बगला है। छोटी-सी बस्ती और बाजार भी है। अगले दिन सवेरे ही वहा से रवाना होकर ८ बजे रामबन पहुचे। रास्ते की शोभा वर्णनातीत थी। पठानकोट से निकलते ही रावी नदी मिली थी, जम्मू से कई मील तक तवी साथ रही और बटोत के बाद चिनाब मिल गई। उछलती-कूदती, कल-कल निनाद करती वह बही जा रही थी। पर्वतों के योग से उस द्वारा

निर्मित प्राकृतिक दृश्य अद्भुत थे।

बनिहाल पहुंचे तो दोपहर हो चुका था। वहां भोजन किया, कुछ फल खरीदे और फिर आगे बढ़े। अब आगे चढ़ाई-ही-चढाई थी। बनिहाल की सबसे ऊंची चोटी पीरपचाल है, जो ८९८९ फुट है। कहते है, दुनिया का यह सबसे ऊंचा मार्ग है। सड़कों के पांच-पांच चक्कर यहां दिखाई देते है और मोटरे और आदमी ऊपर या नीचे खिलौने जैसे जान पड़ते है।

पीरपंचाल के इधर जम्मू घाटी है, उधर श्रीनगर घाटी। यहां वर्ष मे कई महीने वर्फ जमी रहती है और रास्ता वन्द रहता है। वनिहाल के पास से ५ मील लम्वी सुरंग वनाने की योजना चल रही है। उसके पूरे हो जाने पर श्रीनगर का रास्ता बारहों महीने खुला रहेगा।

पीरपंचाल के उधर के दृश्य दूसरी ही तरह के है। शाली (धान) के खेत ऐसे लगते है, मानो किसी ने सीढियां वना दी हों। आगे उतार-ही-उतार है।

रास्ते मे एक ओर को थोड़ा-सा हटकर वेरीनाग आया। यह झेलम का उद्गम है। वडा सुन्दर स्थान है। वीच मे एक कुण्ड है, जिसका जल एकदम नीला दिखाई देता है। पानी इतना साफ कि ५६ फुट की गहराई होते हुए भी तली साफ दिखाई देती थी। यहां अच्छा-खासा उद्यान है, जिसमे सेव और वग्गूगोशे के वहुत से पेड है। अनेक रगों के फूल और प्रपात इस स्थान को अनुपम सौंदर्य प्रदान करते है।

आगे गाजीगुण्ड आया। यहां से श्रीनगर तक मैदान-ही-मदान है। लगभग ५००० फुट की उंचाई पर इतना वड़ा मैदान कैसे वन गया, देखकर आश्चर्य होता है। सड़क के दोनो ओर सफेदे के पेड़ों की कतारे है, जो प्रहरी जैसी लगती है। पामपुर से आगे केसर की क्यारियां देखी, लेकिन केसर का मौसम न होने के कारण वे खाली पड़ी थी।

५ सितम्वर को तीसरे पहर लगभग ४ वजे श्रीनगर पहुंचे। वस के अड्डे पर ज्योही गाड़ी रुकी कि होटल और हाउसवोटवालों ने घेर लिया। लगे शोर मचाने। हम लोगों ने उस ओर ध्यान नही दिया और अपना सामान संभालने लगे। हममें से एक साथी होटल और हाउसवोट देखने गये। ठहरने की व्यवस्था कहां की जाय, यह एक समस्या थी। जिनको सूचना दी थी, उनमे से कोई भी वस के अड्डे पर नही आया था, इससे चिन्ता हुई। आखिर काफी पशोपेश और भागदौड़ के वाद हम लोग गोगजीवाग मे श्रीमती कृष्णा मेहता के यहां पहुचे। इन वहन के पति मुजफ्फरावाद के गवर्नर थे और जव कवाइलियों का काश्मीर पर आक्रमण हुआ तो उसकी रक्षा करते हुए वह शहीद हो गये। कृष्णावहन अव वहां वीमेस रिलीफ केन्द्र का संचालन कर रही है। वह कई वार काशमीर आने का आग्रह कर चुकी थी।

कृष्णावहन के यहां सामान रखकर जान-में-जान आई। एक रात रेल में और दो दिन वस मे गुजरे थे। इससे शरीर वड़ा थका-सा था। सामान व्यवस्थित रखकर खूब नहाये और जल-पान किया। नई जगह थी, मौसम सुहावना था। घूमने निकल पड़े।

श्रीनगर काश्मीर की राजधानी है। यही से लोग काश्मीर के विभिन्न दर्शनीय स्थानों की यात्रा करते है।

: २ :

यात्रा की योजना

रात को दस वजे तक खूव घूमे। शिकारे में वैठकर झेलम की सैर की, वाजार मे घूमे, गांधी आश्रम के व्यवस्थापक श्री रामसुमेरभाई के यहां मिलने गये। वे कही वाहर गये हुए थे।

अतः मिले नही। काफी देर हो चुकी थी। ठिकाने पर लौटे और सो गये।

सवेरे उठे और जलपान किया तवतक रामसुमेरभाई आ गये। हम लोग मिलकर वैठे और आगे का कार्यक्रम वनाने लगे। रामसुमेरभाई ने कहा, "काश्मीर का सवसे सुन्दर स्थान अमरनाथ है। वहा जरूर जाना चाहिए। मेरी राय है कि सवसे पहले वही हो आइये। सर्दी वढ़ती जा रही है। आप लोग एक महीना देर करके आये है। थोड़ी सर्दी और वढ़ी तो अमरनाथ की यात्रा असंभव हो जायगी।"

कृष्णावहन ने उनका अनुमोदन करते हुए कहा, "यह वात विल्कुल सही है। यहां की और जो चीजें देखनी है, जैसे वाग-वगीचे, गुलमर्ग, खिलनमर्ग आदि वे आप लोग लौट कर भी देख सकते है। उनके लिए उतने समय और मेहनत की जरूरत नही है।"

रामसुमेरभाई ने मुस्कराकर कहा, "अमरनाथ हो आये और ये जगहे छूट भी गई तो आप लोगों को मलाल नही होगा, आप लोग घाटे मे नही रहेगे। काश्मीर की सवसे आकर्षक और रोमांचकारी यात्रा अमरनाथ की है। मेरी सलाह है कि आप लोग वहां जरूर जायं और हो सके तो कल ही चले जायं।"

हम लोगों ने दर्शनीय स्थलों की सूची वनाई और सोचने लगे कि पहले आसपास के दो-चार स्थान देख लें तव अमरनाथ जायं या पहले अमरनाथ हो आवें। एक मन होता था कि थोड़ा रुक कर अमरनाथ जाना ठीक होगा, पर साथ ही ख्याल होता था कि थोड़ा रुके तो कही उस यात्रा से वंचित न रह जाना पड़े।

रामसुमेरभाई और कृष्णावहन दोनों का आग्रह था कि पहले अमरनाथ जायं। रामसुमेरभाई ने यह भी वताया कि यात्रा वड़ी कठिन है, टट्टुओं पर वैठे-वैठे पीठ अकड़ जाती है, टांगे छिल जाती है, पर साथ ही उस यात्रा मे जो आनन्द

आता है, वह काश्मीर के किसी भी दूसरे स्थान की यात्रा में नही आता।

काफी सोच-विचार के वाद हम लोगों ने उनकी वात मान ली। तय किया कि दो दिन श्रीनगर में आराम करके और वहां की जो चीजें देख सकें वे देखकर ८ तारीख की सुवह हम लोग पहलगाम को रवाना हो जायं।

श्रीनगर झेलम के किनारे वसा है। प्राकृतिक दृष्टि से वड़ा सुन्दर है। ऊंचे-ऊंचे पर्वत, घने वन, नाना रग के फूल, चिनार के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष, सेव के वगीचे, स्वस्थ स्त्री-पुरुष और वच्चे, ये सव देखते ही वनते हैं। हाउसवोटें, डल झील तथा शालीमार, चश्माशाही, निशात आदि वगीचे वहां की विशेष शोभा है।

दो दिन हम लोग श्रीनगर मे खूव घूमे। डल झील की अच्छी तरह सैर की, उसमें खिले कमल-वन देखे, वाग्-वगीचो मे घूमे, सात पुलों का शिकारे मे वैठकर चक्कर लगाया, शहर मे घूम कर पेपियरमेशी, लकड़ी, ऊन आदि का सामान देखा, वहां के रहन-सहन का अव्ययन किया, गरीवी देखी, पर डल झील और उसके नेहरू पार्क को देखकर दिल वाग-वाग हो गया। गर्मी इस कदर थी कि जी अकुलाता था और गंदगी को देखकर मन को वड़ी हैरानी होती थी। सात पुल देखते समय लगभग तीन-चौथाई शहर आखों के आगे घूम गया था। झेलम के किनारे दोनों ओर खड़े काठ के मकान वड़े अच्छे लगे थे, लेकिन गरीवी और गंदगी उनसे साफ टपकती थी। आश्चर्य होता था कि कैसे इन्ही मकानों मे काश्मीर की अद्वितीय कला पोषण पाती है।

दो दिन यों ही निकल गये, मालूम भी नही पड़े। ८ तारीख को सुवह सवसे पहली वस से हमारी पार्टी पहलगाम के लिए रवाना हो गई।

: ३ :

पहलगाम में

श्रीनगर से हम लोग रवाना हुए तो ९॥ वज चुके थे। बस वाले से एक दिन पहले कह रक्खा था कि हमारे लिए आगे की सीटे रक्खे, लेकिन जबतक अड्डे पर पहुंचे तबतक कुछ यात्रियों ने आकर आगे की सीटे घेर ली थी। बस-कम्पनी के मैनेजर से कहा-सुनी की, लेकिन कोई परिणाम न निकला। हार कर बीच की जो सीटे मिली, उन्ही पर बैठ गये।

श्रीनगर मे कई आदमियों और कम्पनियो की बसे चलती है, लेकिन सीटों पर नम्बर न होने के कारण जो पहले पहुँच जाता है वही आगे की सीटों पर जम जाता है। सीटे वैसे सभी एकसी है; लेकिन पीछे की सीटों पर धक्के अधिक लगते है और उन पर बैठने वालों को कभी-कभी चक्कर आ जाते है, जी भी मिचलाने लगता है। हम लोगों ने तो बिल्कुल आखिरी सीट पर पठानकोट से श्रीनगर तक की यात्रा की थी। कुछ भी नही हुआ। हाँ, धक्के तो अधिक लगते ही है। यात्रियो को चाहिए कि पहले ही से बस के छूटने का समय मालूम करले और जल्दी-से-जल्दी वहाँ पहुंच जायं। दूसरे, जहा तक हो सके, सरकारी बस से जायं। वे अधिक सुविधाजनक होती है।

हम लोग प्राइवेट बस से रवाना हुए थे, जो बड़ी ही रद्दी थी। थोडी-थोड़ी दूर पर उसका इंजन इतना गरम हो जाता था कि रोककर पानी डालना पडता था। कभी-कभी तो इतनी भाप निकलने लगती थी कि आग लग जाने का डर मालूम होता था।

१६ मील चल कर अवन्तीपुर आया। यहां राजा अवन्ती के नवी शताब्दी के बनवाये मंदिरो के भग्नावशेष है। मंदिर के खम्भे बड़ी सुन्दर कारीगरी से युक्त है। बेल-बूटे देखने योग्य

हैं। मंदिरो के शिखर गिर गये हैं और अव केवल खभे और दीवारें खड़ी है। इन मंदिरों की कुछ मूर्तिया श्रीनगर के अजायबघर मे सुरक्षित है।

रास्ता सामान्य है। ऐसा लगता है, मानो किसी समतल भूमि पर चल रहे हों। ५५०० फुट की उचाई का अनुमान ही नहीं होता। गर्मी काफी थी।

३९ मील पर मटन आया। जिस तरह भारत मे गया का धार्मिक महत्त्व है, उसी भाति काश्मीर मे मटन का है। यहां पर हिन्दू लोग पितरों का पिण्डदान, श्राद्ध आदि करते हैं। मटन मार्तण्ड का विगड़ा रूप है, जिसका अर्थ है सूर्य। यह स्थान सूर्य के मदिर और झरने के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। हम लोगो की बस जैसे ही वहा रुकी कि दर्जनो पडों का एक साथ आक्रमण हो गया। उनके हाथ मे लम्बी-लम्बी वहियां थी और वे यात्रियों को घेर कर पूछते थे कि कहां से आये हैं। पण्डों के प्रान्त, जिले और शहर वटे है। हमारी पार्टी के एक साथी के वावा कभी वहां आये थे। उनके हस्ताक्षर देखकर वड़ी प्रसन्नता हुई।

मार्तण्ड-मन्दिर का निर्माण रामादित्य ने पाचवी शताब्दी में कराया था। स्थान सुन्दर है और यहां का जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक कहा जाता है। हम लोगो ने झरने मे जल पिया, मंदिर के दर्शन किये और जैसे-तैसे पंडो से पीछा छुड़ा कर पहलगाम की ओर रवाना हुए।

कुछ आगे चलकर चढाई-ही-चढाई थी। दृश्य बड़े सुन्दर और रमणीक थे। हरियाली खूब थी और हमारे मनोरजन को वढ़ावा देने के लिए झरने थे। २१ मील का यह रास्ता जरा-सी देर मे पार हो गया। १२। वजे पहलगाम पहुंच गये।

वैसे अमरनाथ की यात्रा का प्रारम्भ, जैसा कि पाठक आगे चलकर देखेंगे, श्रीनगर से होता है; लेकिन असली यात्रा पहलगाम से ही शुरू होती है। वस वही तक जाती है और आगे का सफर

टट्टुओं पर या डांडी मे किया जाता है। कुछ लोग पैदल भी जाते हैं, लेकिन वहुत कम।

श्रीनगर से रवाना होते समय रामसुमेरभाई ने पहलगाम के गांधी आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री श्यामलालभाई के नाम एक पत्र दे दिया था। पहलगाम पहुंचकर हम लोगो ने सामान अड्डे पर रक्खा और विट्ठलजी और मै गाधी-आश्रम की खोज में निकले। उस समय वादल घिरे थे और बूंदा-वांदी हो रही थी। खोजने पर गांधी आश्रम पास ही निकला।

श्यामलालभाई मिल गये। उन्होंने वड़ी आत्मीयता से हम लोगों को ठहरने के कई स्थान दिखाये और अन्त मे काश्मीर खालसा होटल मे, जो वाजार के एक नुक्कड़ पर था, एक कमरा तय करके हमारा सामान उसमें लगवा दिया।

पहलगाम छोटी-सी जगह है, लेकिन स्थान वड़ा मनोरम और स्वास्थ्यप्रद है। समुद्रतट से ऊंचाई ७२०० फुट है। लिदर-घाटी के मध्य मे वसे होने के कारण उसकी शोभा का क्या कहना! लिदर नदी यहां तीन धाराओं मे वंट गई है। इन धाराओं का कलकल निनाद वरावर सुनाई देता रहता है। ऊंची-ऊंची पर्वत-मालाएं, चीड़ आदि के गगन-चुम्वी वृक्ष, हिमाच्छादित गिरि-शृंग, आदि यात्री को मुग्धकर देते हैं। छोटा-सा वाजार है, जिसमें जरूरत की सव चीजे मिल जाती है। खाने-पीने के लिए कई ढावे हैं, साग-सव्जी,फलों, गरम कपड़े, दवाइयों, फोटो वगैरा की कई दुकानें हैं। तारघर और डाकखाना है। चार-पांच अच्छे होटल हैं। सरकारी अस्पताल है, नदी के किनारे यात्रियों के लिए कुछ कोठरियां भी वनी हैं; लेकिन ठहरने के लिए सवसे आनन्ददायक चीज तम्वू है, जो वाजार से किराये पर मिल जाते हैं। जरा-सी देर मे जहां चाहें लगवा सकते हैं। एक सप्ताह के पंदह-वीस रुपये देने पड़ते है। आठ आना रोज जमीन का सर-कार को देना पड़ता है और यदि विजली चाहे तो वह भी पांच-

छः रुपये खर्च करने पर आसानी से मिल जाती है।

खा-पीकर जरा सुस्ता कर घूमने निकले। बाजार देखा, नदी के किनारे सैर की और पहाड पर चढकर एक झरना देखने गये, जिसका जल बडा ही स्वास्थ्यप्रद माना जाता है। दिल्ली से चलते समय पता चला था कि हमारे मित्र श्री विष्णुहरि डालमिया सकुटुम्ब पहलगाम जा रहे है और हमसे पहले ही पहुच जायगे। डाकखाने से उनका अता-पता पूछ करके लौटे तो बाजार मे उनसे भेंट हो गई। इलाहाबाद के ला जर्नल प्रेस के संचालक श्री मदनमोहन तायल भी सपरिवार मिले। पठानकोट से आते समय बस मे कई यात्रियो से मित्रता हो गई थी। उनमे से कुछ बाजार में चहलकदमी करते मिले। शाम को जब जल-प्रपात देखने जा रहे थे तो ऊपर से कुछ लोगों को उतरते देखा। एक व्यक्ति बाह के सहारे एक बालक को उठाये तेजी से नीचे आ रहा था। रास्ता ऊबड़खाबड था, पर वह उस ओर से तनिक भी चिन्तित न था। एक बालक को नीचे पहुंचाया, फिर उसी तेजी से ऊपर गया और दूसरे को उसी तरह नीचे ले आया। उसके पीछे एक युवती छोटे बालक को गोद मे लिये वैसी ही बेफिक्री से आ रही थी। उन्हे रोक कर हम लोगो ने बात की तो पता चला कि वह सारा कुनबा पिछले हफ्ते अमरनाथ की यात्रा करके लौटा है। युवती ने मुस्कराते हुए कहा, "मै तो इस गोद के बालक को लेकर गई थी।" सुनकर अच्छा लगा और अमरनाथ की यात्रा का हमारा सकल्प और प्रबल हुआ।

झरने के पास थोड़ी देर बैठकर हम लोग पहाड़ के ऊपर-ही-ऊपर के लम्बे रास्ते से उतरे। दाए-बाए ऊचे-ऊचे चीड़ के अनगिनत पेड़ खड़े थे और ऊपर से घाटी मे बसे पहलगाम की बस्ती और लिदर की जल-धाराओ को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई चित्र देख रहे हो।

आगे बढ़ने पर एक बालक टट्टू के साथ मिला। उसे

रोककर हम लोगों ने वारी-वारी से टट्टू की सवारी की और अपने-अपने साहस की परीक्षा कर ली। विश्वास हो गया कि अमरनाथ की यात्रा मे हम लोग डरपोक सवार नहीं सावित होंगे।

नदी का पुल पार करते समय दिल्ली की पार्टी फिर मिल गई। वातचीत मे मालूम हुआ कि विष्णुजी सपरिवार १० तारीख को अमरनाथ की यात्रा का कार्यक्रम वना रहे है। हम लोगों ने भी निश्चय किया कि अगर कोई विशेष वात न हुई तो १० को ही चलने का ठीक रक्खे। एक और भी कारण था। १० सितम्वर को त्रयोदशी थी। हम लोगों ने सोचा कि दो राते मार्ग मे विता कर भाद्रपद पूर्णिमा को अमरनाथ के दर्शन करेंगे तो अधिक अच्छा रहेगा।

अमरनाथ की गणना भारत के महान् तीर्थों मे की जाती है। उसका इतना माहात्म्य है कि रास्ते की भयंकरता तथा मुसीवतों की चिंता न करके प्रतिवर्ष सहस्रों नर-नारी देश के कोने-कोने से वहां जाते है और शिव, पार्वती तथा गणेश की हिममूर्तियों के दर्शन कर जीवन की धन्यता अनुभव करते है। यात्रियों मे सभी मत-मतांतरो और धर्मो के लोग होते है और जव वे मिल कर वहां की यात्रा करते है तो ऐसा प्रतीत होता है, मानों वे सव एक ही परिवार के सदस्य हों।

प्रकृति-प्रेमियों के लिए भी अमरनाथ का महत्त्व और आकर्पण कम नहीं है। रास्ते मे ऐसे-ऐसे मनोहारी दृश्य मिलते हैं और स्वयं अमरनाथ का रूप इतना उदात्त एवं भव्य है कि उन्हे देख कर शुष्क-से-शुष्क व्यक्ति का भी हृदय आनंद से उछल पड़ता है। सच तो यह है कि विना अमरनाथ की यात्रा के कास्मीर का प्रवास पूर्ण नही माना जा सकता। जवतक असह्य जाड़े तथा दुर्लंघ्य हिम के कारण वहां का रास्ता वंद नही हो जाता तवतक देश-विदेश के पर्यटकों तथा धर्मपरायण नर-नारियो का आवा-

गमन बना रहता है। आषाढ से क्वार तक वहां जाने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या ३५-४० प्रतिदिन के लगभग होती है। मेले की बात अलग है। उसमे तो हजारो यात्री सम्मिलित होते हैं।

अमरनाथ का रास्ता वैसे आषाढ़ से क्वार तक के चार महीनो में खुला रहता है, लेकिन यात्रा का सर्वोत्तम समय श्रावण अर्थात् अगस्त का पहला सप्ताह माना जाता है। उन दिनों बर्फ कम होती है, जाडा विशेष कष्टकर नही होता और सब से बड़ी बात यह है कि श्रावणी पूर्णिमा का चन्द्रमा ज्योही अपनी आभा से भूतल को दिव्यता प्रदान करता है, गुफा की मूर्तियों के बडे ही विलक्षण रूप में दर्शन होते हैं। कहते हैं, वैसे दर्शन यात्रियो को दूसरे दिनों मे नहीं होते। मूर्तियो की बर्फ पिघलने लगती है और बाद में वे हिम का एक ढेर-मात्र रह जाती है।

: ४ :

मन की दुविधा

घूमघाम कर रात को डेरे पर लौट आये, भोजन की व्यवस्था की और खा-पीकर बैठे कि इतने में एक पंडा महाराज आ गये। उन्होने बताया कि वह दो-तीन दिन पहले ही अमरनाथ से लौटे है। उन्होंने वहा का कुछ ऐसा डरावना चित्र खीचा कि हम लोग सोच में पड़ गये। वह बोले, "अजी, रास्ता बडा भयानक है। इसपर, सुना है कि कल पानी पड़ गया है। फिसलन के साथ-साथ जाडा बेहद हो गया होगा।"

हमने कहा, "और भी तो बहुत-से लोग जा रहे है।"

उन्होने जवाब दिया, "देखिये, कितने पहुंचते हैं!"

फिर कुछ रुककर बोले, "बच्चों के साथ जाने की सलाह तो मैं हर्गिज नही दूंगा।"

और बहुत-सी वाते कह-कहा कर पंडाजी चले गये। उनके इस वर्णन से मन मे एक दुविधा पैदा हो गई। श्रीनगर से चले थे तभी से सुधीर को कुछ-कुछ सर्दी हो रही थी। यहां उसने ठण्डे पानी मे खूब हाथ दिया, झरने के पानी मे खेला। नतीजा यह हुआ कि रात को सर्दी और वढ़ गई और उसका गला वैठ गया। पडाजी जिस समय उठकर गये, हमारा ध्यान वार-वार सुधीर की ओर जाने लगा। यदि उसकी तवीयत और विगड गई तो ? निमोनिया हो गया तो ? रास्ते मे खूव सर्दी होगी, वरफ पर चलना पड़ेगा, आदि-आदि विचार मन मे उठने लगे। आदर्श पहले तो चुप रही, फिर कहने लगी, "सुधीर को लेकर जाने की मेरी राय नही है। उसे अगर कुछ हो गया तो लोग हमे पागल कहेगे।" जीतमलजी, जिन्हे हम सव प्रेम और आदर से 'मालक' कहते है, का मन भी डांवाडोल होने लगा। उन्होने कहा, "मेरी तवीयत कुछ गिर-सी रही है ? मन मे उत्साह नही है।" लक्ष्मीभाभी, विट्ठलजी और अन्नदा के मन मे हिचक नही थी। सुधीर तो जुकाम से पीड़ित होने पर भी जाने के लिए रस्सी तुड़ाकर भागने को हो रहा था, पर मेरा और आदर्श का मन सुधीर के कारण कभी इधर तो कभी उधर होता था। यही चर्चा करते-करते हम लोग सो गये।

सवेरे उठे तो सुधीर का जुकाम जोरों पर था। रात को उसे थोड़ी हरारत भी हो गई थी, लेकिन अमरनाथ जाने के वारे मे उसके उत्साह मे कोई कमी नही आई थी। वह वार-वार अपनी मा से कहता था, "तुम भले ही रह जाना, मै तो जरूर जाऊंगा।"

तैयारी के लिए आज का ही दिन वाकी रहा था। अगले दिन तो चल ही देना था, पर हम लोग कोई निर्णय नही कर पाते थे। आदर्श वार-वार कहती थी, "मै सुधीर के पास रह जाऊगी। तुम लोग चले जाओ।" मालक कहते थे कि रह जाय तो उसे मै रख लूगा।

यही स्थिति चलती रही। मन में अस्थिरता थी, लेकिन जाने के लिए तैयारी न करते तो जाने वालों के भी रह जाने का डर था। इसलिए श्यामलालभाई से कहा कि सामान वगैरा तो इकट्ठा कर ही लिया जाय। १०-११ बजे घूमने निकले तो मालूम हुआ कि बिड़ला-परिवार के श्री वसंतकुमार बिड़ला अपने दल के साथ अमरनाथ से लौट आये हे। उनकी पार्टी के कुछ लोग भी मिले। उन्होने बताया कि डरने की कोई बात नही है। पानी थोड़ा जरूर पड़ गया है, लेकिन रास्ता ठीक है। उस पार्टी के साथ काशीनाथ नाम के एक पडा गये थे। वह भी मिले। उन्होने कहा कि आप लोग जरूर जायं। रास्ता उतना बुरा नही है, जितना कि बताया जाता है।

श्रीनगर की अपेक्षा पहलगाम मे सर्दी बहुत थी, लेकिन मौसम साफ था। आसमान में वादलो का नाम भी नही था, धूप निकली थी। इससे अनुमान हुआ कि ऊपर अब वर्षा की अधिक सभावना नही है।

दोपहर को सुधीर को एक केमिस्ट को दिखाने ले गया। उससे बात हो ही रही थी कि दुकान मे एक सज्जन आये। केमिस्ट ने अदाज से कहा कि वह डाक्टर मालूम होते है। पूछा तो उन्होने कहा, "मै डाक्टर नही हूं। आपकी ही तरह यात्री हू, पर हमारी टोली में दो डाक्टर है। जरूरत हो तो बुलाऊं।" मेरे 'हा' कहने पर वह बाजार मे घूमते हुए अपने डाक्टर मित्र को बुला लाये। उन्होंने सुधीर का गला देखा, छाती देखी और कहा कि चिंता की कोई बात नही है। ठीक है।

मैने पूछा, "इसे इस हालत मे अमरनाथ ले जाय?"

डाक्टर ने फौरन उत्तर दिया, "जरूर, भगवान पर भरोसा रक्खे। फिर हम लोग भी तो आपके साथ ही चल रहे है।"

इतना कहकर डाक्टर ने एक नुस्खा लिखकर दिया और कहा, "भगवान ने चाहा तो इस दवा से शाम तक बहुत-कुछ

आराम हो जायगा।"

इन वंगाली डाक्टर की बातों से हम लोगों को वड़ा दिलासा मिला, हिम्मत वंधी। डाक्टर दार्जिलिंग से आये थे और उनकी पार्टी भी अगले दिन अमरनाथ जा रही थी। वाजार मे लोगों से चर्चा करने पर मालूम हुआ कि अगले दिन लगभग डेढ़ सौ आदमी यात्रा पर जा रहे हैं।

हम लोगों ने कई आदमियों से जाने के वारे मे पूछा। सव की अलग-अलग राय थी। कोई कहता था कि रास्ता बड़ा वीहड़ है और अव जाने का मौसम नही रहा। कोई कहता कि ऐसी कोई बात नही है। आखिर इतने आदमी जा ही रहे हैं। रास्ता वहुत खराव होता तो क्यो जाते? कोई कहता कि वच्चों के साथ जाना मुनासिव नही होगा। लेकिन गांधी-आश्रम के श्यामलालभाई वरावर सवके जाने का आग्रह कर रहे थे। वह वात-वात में कहते, "वेफिक्र रहो।" उनके मुह से कभी कोई निराशाजनक वात निकली हो, मुझे याद नही। उन्होंने कहा कि कपड़े साथ मे काफी होने चाहिए, फिर कोई फिक्र की वात नही है। वच्चे भी मजे मे जा सकते हैं।

अव एक समस्या यह खड़ी हुई कि अन्नदा और सुधीर को ले जाया जाय तो उनके गरम कपड़ो का पूरा-पूरा वन्दोवस्त होना चाहिए। दोनों के पास पूरी वांह के स्वेटर थे, कोट थे, लेकिन टांगों को ढकने के लिए पतलून या पाजामा जैसा कुछ नही था। श्यामलालभाई को मैंने यह कठिनाई वताई तो अपने स्वभाव के अनुसार उन्होने फौरन कहा, "वेफिक्र रहिये। हम आश्रम के अपने टेलर-मास्टर से दोनो के लिए पतलून तैयार करवा देंगे। वक्त पर मिल जायगी।" इतना कहकर उन्होंने पसन्द करने के लिए कई तरह की ट्वीडे सामने मेज पर निकालकर रख दी। हमने सोचा कि वच्चे साथ जायं या न जायं, कपड़े सिल जायंगे तो काश्मीर की ठंड में काम आ जायंगे। दोनों की पतलूनों के

लिए दो अलग-अलग कपड़े पसन्द किये और टेलर-मास्टर को, जो आश्रम में ही बैठ कर सिलाई करते थे, सौंप दिये। मन में डर था कि कहीं कपडों को बिगाड न दे, पर उन्हे देने के सिवा और कोई चारा ही न था।

मन डावाडोल था, फिर भी श्यामलालभाई की मदद से हम लोगो ने साथ मे जाने वाले सामान की सूची तैयार की। विचार हुआ कि कुछ तो पूड़िया और साग तैयार करालें और कुछ ऐसा सामान रहे कि जिससे मौका मिलने पर स्वय खाना तैयार कर लिया जाय। ओढने-विछाने के लिए श्यामलालभाई ने आश्रम से कुछ नमदे और लोइयो का प्रवन्ध कर दिया। साग-भाजी, फल, स्टोव, लालटेन, पूजा की सामग्री, आटा, चावल, मिट्टी का तेल, स्प्रिरिट आदि-आदि चीजो की लम्वी सूची वन गई और श्यामलालभाई ने आश्वासन दिया कि रात तक वह सारी चीजे इकट्ठी कर देगे और अंत मे मुस्कराते हुए कह दिया, "आप लोग वेफिक्र रहें।"

दोपहर तक का समय योंही निकल गया। यद्यपि डाक्टर ने दिलजमई कर दी थी, फिर भी एक साथ इधर या उधर निश्चय नही होता था। सुधीर वार-वार कहता था कि मै जरूर जाऊंगा। आदर्श कहती थी कि मै सुधीर को ले जाने की हर्गिज सलाह नही दूगी। मालक की सुस्ती चल रही थी। उनकी सलाह थी कि सुधीर को नही ले जाना चाहिए। विट्ठलजी कहते थे कि जरूर ले चलना चाहिए। लक्ष्मीभाभी चुपचाप सवकी वातें सुनती रही। अंत में उन्होंने वड़े उत्साह और विश्वास के साथ कहा, "इसमे इतना सोचने की क्या वात है? भगवान का नाम-लो और ले चलो, मेरी जिम्मेदारी पर ले चलो। भगवान सव ठीक करेंगे।"

भाभी का इतना कहना था कि मन की दुविवा दूर हो गई और एक साथ सवके चलने का निश्चय हो गया। वात असल में

यह थी कि इस महान यात्रा के लिए सभी लालायित थे और बहुत मजबूरी की हालत को छोड़कर रुकने की किसी की भी इच्छा नही थी। मन की दुविधा दूर होते ही यात्रा की तैयारी उमंग से होने लगी।

: ५ :

तैयारी और प्रस्थान

श्री श्यामलालभाई सारा सामान इकट्ठा करने मे लगे थे। उन्होंने सामान लेने मे बराबर इस बात का ध्यान रक्खा कि भले ही कुछ ज्यादा हो जाय, पर कम कोई भी चीज न पड़ने पाये। व्यवस्था जब उनके हाथ मे थी तो हमे सामान की कोताई के कारण किसी प्रकारकी असुविधा होना उनके लिए अच्छी बात नही है, यह सावधानी उनके मन मे बराबर बनी थी। उन्होंने कुछ सामान खरीदा, कुछ किराये पर लिया, कुछ अपने यहा से दिया। रात को नौ-दस बजे तक बहुत थोड़ी चीजों को छोड़कर शेष सब सामान हमारे कमरे मे आ गया। गांधी-आश्रम से सबने गरम मोजे खरीदे, विट्ठलजी और सुधीर ने सिर और कानो को ढकने वाले टोपे, अन्नदा ने मफलर और मालक और मार्तण्डजी ने सिर पर पहनने की गरम टोपियां ली, जो खीचकर कानों तक आ जाती थीं। कंधों पर लटकाने वाले दो झोले सिलवाये। टेलर-मास्टर बच्चों की पतलूने तैयार करने मे जुटे थे।

शाम को हमारे पड़ौस के कमरे के लोग अमरनाथ से लौटे। हमे मालूम हुआ तो उनसे प्रश्नों की झड़ी लगादी। उन्होने बताया कि यात्रा कठिन नहीं है। थोड़ा पानी जरूर पड़ गया था, लेकिन रास्ता साफ है। कोई डर नही है।

सारा सामान जुटाकर हम लोग रात को सोने को हुए तो

श्यामलालभाई आये। उन्होने कहा कि सामान तो सव आ गया, लेकिन कल जाने वाले यात्री अधिक होने के कारण टट्टू महगे मिले है, सवारी के कोई १७॥) फी टट्टू और लद्दू भी कुछ इसी हिसाव से। पहले अन्दाज था कि नौ-नौ, दस-दस रुपये मे हो जायंगे। जो हो, अव सोचने का मौका न था। उसी समय काशीनाथ पंडा आये। उन्होंने वताया कि विष्णुजी की पार्टी ११वजे रवाना हो रही है और वे लोग चाहते है कि हम लोग भी साथ ही चलें। उन्होंने यह भी वताया कि वे लोग रात चंदनवाड़ी से आगे जोजपाल में विताना चाहते हैं, जिससे १२ मील रास्ता पार हो जाय, अगले दिन के लिए कुल वारह मील चलने को रह जायं और फिर धीरे-धीरे शेष चार मील तय करके तीसरे दिन अमरनाथ पहुचे, पूर्णिमा को। वैसे यात्रा दो ही दिन में हो जाती है और लोग दूसरे दिन ही अमरनाथ के दर्शन कर लेते हैं, लेकिन हम लोग मजे-मजे मे यात्रा करे, ऐसी उनकी इच्छा थी।

हमें इसमें भला क्या आपत्ति हो सकती थी! हमने जोज-पाल मे ठहरने की वात मान ली, लेकिन उनसे कह दिया कि हम कुछ जल्दी ही रवाना होकर पहले पड़ाव चंदनवाड़ी में मिल जायगे।

सवेरे जल्दी उठे। निवृत्त हुए, नहाये-धोये, विस्तर वांधे, सामान कुछ पेटी मे रक्खा, कुछ वोरी मे डाला। सुधीर रात को खूव सोया था। उसकी तवीयत अपेक्षाकृत ठीक लगी, फिर भी जुकाम साफ नही हुआ था। टेलर-मास्टर ने सारी रात जगकर दोनों की पतलूनें तैयार कर दी थी। वच्चो ने पहनी तो विल्कुल ठीक वैठी। सिलाई काफी अच्छी हुई थी।

खाने-पीने का कुछ सामान जो वाकी रह गया था वाजार से खरीदा और सव चीजो को जमाया।

कुछ यात्री वड़े तड़के निकल गये थे, कुछ जाने के लिए

तैयार खड़े थे। हम लोगों ने भी श्यामलालभाई से कहकर टट्टू मगवाये। जिस समय सामान निकाल कर कमरे के बाहर बरामदे मे रख रहे थे, देखते क्या है कि बाहर बडा शोर मच रहा है। बाहर जाकर देखा तो बडा विचित्र दृश्य सामने आया। एक अधेड उम्र के सज्जन रात की पोशाक पहने एक टट्टू की लगाम पकड़े अपनी ओर खीच रहे थे और उसी टट्टू की लगाम को पकडकर श्यामलालभाई दूसरी ओर खीच रहे थे। दोनो बड़े तेज हो रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि झगडे की जड़ टट्टू है। उन सज्जन का कहना था कि उन्होने ५०) पेशगी देकर उस तथा अन्य टट्टुओं को अपनी पार्टी के लिए तय कर रक्खा है। श्यामलालभाई का कहना था कि ये टट्टू हमारे लिए है। विट्ठलजी और मैंने बीच में पड़कर मामला शात करना चाहा, लेकिन बात सुलझी नही। तब यह तय हुआ कि टूरिस्ट ब्यूरो के अधिकारी के पास पहुच कर रास्ता निकाला जाय। अधिकारी को बुलाया। वह आये और उन्होंने आते ही न कुछ पूछा, न जांचा और फैसला सुना दिया कि टट्टू उन सज्जन को दे दिये जायं। इस पर मार्तण्डजी को गुस्सा आ गया। उन्होंने उनसे कुछ सख्त-सुस्त कह दिया। सरकारी अधिकारी भला रैयत की गरमी कैसे सहन करते। वे दुगने गरम हुए, लेकिन किसी प्रकार हम लोगो ने उन्हे शात किया। सारी बात जब उन अधिकारी महाशय को समझाई गई तब उनकी अक्ल मे आया कि उनका फैसला जल्दी मे हुआ था। फिर तो उन्होंने दोनों पार्टियों के लिए टट्टू का प्रबन्ध करने का आश्वासन दिया और हमारी पार्टी को श्यामलालभाई द्वारा तय किये गए टट्टू मिल गये।

सामान तयार था ही, टट्टू वाले अब उसे अपने हिसाब से बाँधने लगे। हमारे पास आठ सवारी के टट्टू थे और चार लद्दू। चूकि जोजपाल मे ठहरने के लिए कोई बनी-बनाई जगह न थी, केवल सपाट मैदान था, इसलिए सोचा कि एक तम्बू भी

साथ ले जाना चाहिए । अब समस्या सामने आई कि उसे ले जाने के लिए और टट्टू कहां से आवेगा ? लेकिन श्यामलालभाई ने अपनी चिरपरिचित मुस्कान के साथ कहा, "आप फिक्र न करें। बन्दोबस्त हो जायगा ।"

सामान लदते-लदाते १० बज गये । अब प्रतीक्षा थी तम्बू के टट्टू की । आधा घंटा और राह देखी । फिर भी समाचार न आया तो मार्तण्डजी और मैं पीछे रह गये, शेष पार्टी टट्टुओं पर सवार हो गई और भगवान का नाम लेकर विदा हुई ।

पार्टी को विदा करके हम दोनो थोडा नाश्ता करने और समय काटने के लिए एक होटल मे चले गये । नाश्ता शुरू ही किया था कि श्यामलाल भाई सामने से आते दिखाई दिये । उन्होंने बताया कि तम्बू का प्रबन्ध हो गया है और वह विष्णुजी की पार्टी के साथ रहेगा । चिंता दूर हुई और हम लोग भी अपने-अपने टट्टुओ पर सवार होकर चल दिये । हमारी इच्छा थी कि अमरनाथ की यात्रा से लौटने पर होटल के बजाय नदी के किनारे तम्बू मे ठहरा जाय । अत चलते-चलते हमने श्यामलाल-भाई से १३ सितम्बर को नदी के किनारे एक तम्बू लगवा रखने के लिए कहा । उन्होने तत्काल उत्तर दिया, "आप बेफिक्र रहिये । लौटने पर सबकुछ तैयार मिलेगा। "

काफी यात्री अमरनाथ की यात्रा पर आज जा रहे थे । हमने हिसाब लगाया तो पता चला कि आज की यात्रा में देश के अनेक भागों का प्रतिनिधित्व हो गया था । गुजरात, बगाल, मद्रास, दिल्ली, मालवा, राजस्थान, अजमेर, उत्तर प्रदेश, पंजाब, आदि भागों के लोग थे और इस प्रकार यह यात्री-दल अखिल भारतीय बन गया था ।

उस दिन शुक्रवार था, भाद्रपद शुक्ल १३ । हम लोग रवाना हुए उस समय बादल सूर्य से इधर-उधर हो गये थे और चिलचिलाती धूप निकल आई थी । मन-ही-मन सूर्य-देवता को

प्रणाम किया और टट्टुओं पर सवार होकर चल दिये। कुछ टट्टू वाले सामान के साथ चले गये थे, कुछ सवारी के टट्टुओं के साथ। गुलाम नवी हम दो के टट्टुओं को संभालने के लिए रह गया था। वह हमारे साथ चला।

टट्टुओं के जमादार का नाम मुहम्मद रमजान था, जो हमारी टोली के साथ चला गया था। गुलामनवी ने वताया कि सब टट्टुओं के अलग-अलग नाम हैं। मार्तण्डजी के टट्टू का नाम गुलावा था, मेरे का वुलवुल, आदर्श के टट्टू का नाम भी वुलवुल था, भाभी का वहादुर, मालक का कस्तूड़ा, अन्नदा का पवन, विट्ठलजी का गुरक और सुधीर का लालवहादुर। टट्टुओं पर सवार होते ही हम लोगों ने एड़ लगाई और जरा तेज चलाया कि शेप पार्टी को पकड़ ले, पर गुलामनवी ने कहा, "धीरे-धीरे चलाइये। अभी तो सारा सफर सामने है। भगाने से घोड़े थक जायगे।"

: ६ :

वार्षिक यात्रा

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, अमरनाथ की वार्षिक यात्रा श्रावण मास, यानी अगस्त मे होती है। भारत के विभिन्न भागों से लोग आ-आकर श्रीनगर के दशनामी अखाड़े पर इकट्ठे हो जाते है और श्रावण की अमावस्या के दिन यात्रा प्रारम्भ होती है। दूर-दूर के यात्री, साधु-महात्मा, भजनीक, उपदेशक सव मिलकर वड़े उत्साह से भजन-कीर्तन करते है, उपदेश होते है और चौथे दिन यात्री-दल वहां से चल पड़ता है। यात्रा के आगे-आगे भैरोंजी का पुजारी छड़ी लेकर चलता है। छड़ी दशनामी अखाड़े मे रक्खी रहती है और इस विशेप अवसर पर काम आती है। वह महादेवजी के चिन्ह-स्वरूप होती है। कहते

है, इसकी पूजा काश्मीर सरकार की ओर से होती है। उस पर एक सौ ग्यारह रुपये और सोने का यज्ञोपवीत भेंट चढाया जाता है। सारा यात्री-दल उत्साह और आनन्द से ओतप्रोत होता है। कभी वे भजन गाते है तो कभी शंकर, शभु आदि के जयघोष करते हैं। दिन मे लगभग आठ-दस मील चलकर पडाव पर ठहर जाते है, भोजन बनाते है, खाते-पीते है। पहलगाम तक भोजन और निवास का कोई कष्ट नही होता। ठहरने के लिए सुव्यवस्थित पड़ाव हैं, लेकिन पहलगाम के बाद अपना प्रबन्ध स्वय करना पड़ता है। बहुत से यात्री मोटर-लारियो से पहलगाम पहुच जाते है और वहा से दल मे शामिल हो जाते है।

यात्रा श्रावण सुदी चौथ को श्रीनगर से चलकर रास्ते में ठहरती हुई षष्ठी को अनन्तनाग और सप्तमी को मटन पहुचती है। अनन्तनाग पहाड़ की तलहटी मे बसा है और काश्मीर में दूसरी श्रेणी का नगर है। मुसलमान इसे इसलामाबाद भी कहते हैं। यहां पर अनेक झरने हैं। काश्मीरी कला-कौशल का अच्छा काम होता है। यहा के प्रसिद्ध झरने का नाम 'मलखनाग' है। यहा पर दो कुण्ड है। एक कुण्ड के बीच में मदिर दूसरे मे शिवलिंग है। दोनों कुडो का पानी कारीगरी से युक्त एक पत्थर पर होकर प्रपात के रूप मे कलकल निनाद करता हुआ गिरता है। एक ओर को गंधक का झरना है। श्रीनगर से यह स्थान ३६ मील है। सडक अच्छी है। यहां आने के रास्ते मे पामपुर, अवन्तीपुर, मटन आदि स्थान पड़ते है।

यात्रा एक दिन मटन मे ठहर कर नवमी के दिन ऐशमुकाम पहुंचती है और दशमी को पहलगाम। पहलगाम से एक मील आगे उसके ठहरने का स्थान है। वहा से लोग टट्टुओ पर या डाडी मे जाते है। यात्रा के समय बहुत से लोग पैदल भी जाते है। यहा से आगे का वर्णन हम आगे के अध्यायो मे विस्तार से करेंगे। रास्ते मे कई स्थानों पर पड़ाव डालते हुए यात्रा पूर्णिमा

को अमरनाथ पहुंचती है और वहां शिव, पार्वती और गणेश के दर्शन करती है। उस दिन शिवलिंग पूरे आकार में होता है और पार्वती और गणेश की मूर्तियां भी बड़ी भव्य दिखाई देती हैं। बाद मे बर्फ पिघलने लगती है और यात्रियो का यद्यपि आना-जाना होता ही रहता है, तथापि उस रूप मे उनके दर्शन नही होते, जिस रूप मे पूर्णिमा को होते हैं।

यात्रा के समय कश्मीर राज्य की ओर से ठहरने, सुरक्षा, दवा-दारू आदि की व्यवस्था हो जाती है। यात्रा के साथ जाने मे अपना आनन्द है। धार्मिक व्यक्तियो को उसी के साथ जाना चाहिए। खूब चहल-पहल, भजनकीर्तन, उपदेश आदि का लाभ सहज ही मिल जाता है। श्रद्धा-भक्ति मे डूबे हजारो नर-नारियो मे भगवान के दर्शन हो जाते हैं; लेकिन जिन्हे यात्रा का वास्तविक आनद लेना है, उन्हे मेले से पहले या बाद में जाना चाहिए। मेले के समय एक तो गंदगी बहुत हो जाती है, दूसरे कोलाहल इतना अधिक होता है कि आदमी उसमे खो जाता है, स्वतन्त्र रूप से चिन्तन या प्रकृति का निरीक्षण नही कर सकता। सारा रास्ता इतना सुन्दर है, इतना भव्य है कि प्रकृति-प्रेमी को पग-पग पर बड़ी मूल्यवान् सामग्री प्राप्त होती है। प्रकृति की छटा को देखकर वह मुग्ध रह जाता है। प्रकृति के इस मनोहारी रूप की झांकी भीड मे नही ली जा सकती।

यात्रा के समय पहलगाम मे टट्टू, डांडी आदि सब मिल जाते हैं, लेकिन मांग अधिक होने के कारण महंगे मिलते है। सरकारी दर सवारी के टट्टू की फी टट्टू १७॥) और लद्दू की १५) रुपये है, डाडी ८५)।

खाने की व्यवस्था यात्रियों को स्वय करनी होती है। चदन-वाड़ी पर कुछ दुकाने है। उससे आगे कुछ भी नही मिलता।

: ७ :

पहला पड़ाव

अपने-अपने टट्टू पर सवार होकर हम आगे बढे तो कुछ ही कदम पर सडक के किनारे एक तख्ती लगी मिली, जिस पर लिखा था :

पहलगाम	० मील
चदनवाडी	८ मील
वायुजन	१६ मील
पंचतरणी	२४ मील
अमरनाथ की गुफा	२८ मील
पहलगाम	५७०० फुट

तख्ती पर सरसरी निगाह डालकर आग वढ चले। अपनी पार्टी के साथ मिल जाने की जल्दी जो थी। लगभग एक मील चलने पर पुराने पहलगाम गाव की थोडे-से घरो की वस्ती मिली। वही लद्दू टट्टू और टोली के लोग खड़े थे। मालक का चेहरा खिला हुआ था। सुवीर की ओर से अव भी डर बना था, लेकिन अपने लालवहादुर को उसने सवसे आगे कर लिया था, जो अमरनाथ तक आने-जाने मे वरावर आगे रहा। सवसे अधिक शैतान मार्तंडजी का टट्टू था। उसके वरावर जव कोई दूसरा टट्टू आ जाता तो वह कान खडे करता और गर्दन टेढी करके दांत निकालकर ऐसा मुह मारता कि यदि दूसरा सवार सावधान न होता तो वह स्वयं या उसका टट्टू जरूर चोट खा जाता। गुलावा की यह आदत अत तक नही छूटी।

पहलगाम वडा सुन्दर है, लेकिन आगे का रास्ता देखकर हम लोग पहलगाम को भूल गये। पहलगाम से निकलते ही लिदर नदी साथ हो गई थी और जैसे-जैसे हम आगे वढते गये,

उसका रूप निरंतर निखरता गया। ऐसे दृश्य प्रायः कम देखने में आते हैं। पहाड़ के वक्ष पर पतली सांपिन की तरह वल खाती पगडंडी जाती है। वाईं ओर ऊंचे पर्वत, जिन पर हरियाली का नाम नहीं, दांईं ओर तेजी से वहती हुईं लिदर नदी, जिसके दोनों तटों पर ही नही, ऊपर उंचाईं तक चीड़, वदलू, अखरोट, जाम, कंजिल, वुरिग, ब्राड़ी, कुलमाछ आदि के हरे-भरे गगन-चुम्वी वृक्ष। पुराने पहलगाम के निकट सफेदे के पेड़ मिले थे, लेकिन ज्यों-ज्यों आगे वढ़ते गये, उनका स्थान दूसरे पेड़ लेते गये। वड़ा विचित्र दृश्य था। एक ओर देखो तो सपाट पहाड़, दूसरी ओर देखो तो विलक्षण हरियाली, पीछे देखो तो ऐसे दृश्य, मानो कोई चित्र देख रहे हों। वीच-वीच में मक्की के खेत ऐसे जान पड़ते थे जैसे किसी ने सीढ़ियां वना दी हों। वैसे काश्मीर का मुख्य भोजन चावल है और वनिहाल की घाटी से श्रीनगर तक शाली के लहलहाते खेत देख कर हृदय उछल पड़ा था, लेकिन यहां मक्की के खेत थे, जिनकी रखवाली के लिए यत्र-तत्र इक्की-दुक्की झोपड़ियां पड़ी हुई थीं। आश्चर्य होता था कि उस निर्जन स्थान में चार-छः व्यक्ति किस प्रेरणा से अपने जीवन के लम्वे वर्ष विता देते हैं। उनके छोटे-छोटे खिलौनों जैसे वच्चे यात्रियों को देखते ही दौड़े आते हैं और हाथ फैलाकर कहते हैं, "सेठ साव, पैसा दो।" उनकी प्यारी सूरत और स्वस्थ शरीर को देख कर जहां हर्ष होता है, वहां उनकी मांगने की वृत्ति पर क्षोभ भी होता है। इसमें दोष, वास्तव में, वच्चों का नहीं है, उन व्यक्तियों का है, जिन्होंने उन्हें पैसे दे-देकर भिखारी वना दिया है।

हम लोगों के टट्टुओं को देख कर दो नन्ही-नन्ही वालिकाएं दौड़ी आईं और आदत के अनुसार उन्होंने हाथ फैला दिये। उनके चेहरे फूल-से खिले थे, सेव जैसे सुर्ख, लेकिन कपड़े निहायत गंदे। सिर के अग्र भाग में वालों की पतली-पतली इतनी वेणियां गुंथी थीं कि देखकर आश्चर्य होता था। पता नहीं, उनके तैयार करने मे कितना समय लगता होगा। उनके शरीर के भीतरी

गदे कपड़ो के ऊपर लम्वे चुगे जैसी फिरन थी, लेकिन वयस्क युवतियां अथवा वडी उम्र की महिलाओ जैसे आभूषण न थे। वे पैसे के लिए रट लगाए हुए थी। हम लोग देर तक उनकी ओर देखते रहे, फिर मैंने कहा, "मागो मत।" मन को वड़ा वुरा लगा। इतनी उचाई पर प्रकृति के अलौकिक सौदर्य के वीच, मानव का याचक रूप हृदय पर वड़ी चोट करता था। पैसे देने की जगह यदि यात्री इन वच्चो के लिए कोई ऐसी चीजें ले जायं तो अधिक अच्छा हो, जिनसे उनके ज्ञान मे वृद्धि हो और उनका स्तर ऊंचा उठाने में सहायता मिले; लेकिन इतनी दूरदर्शिता कितनों मे है ?

हम लोगों ने नदी का पहला काठ का पुल पार किया तो अच्छा लगा, लेकिन उससे कुछ आगे निकल कर जव हमारा संकीर्ण मार्ग ऊंचे-से-ऊंचा होता गया और कही-कही पर खतरे-भरे ढाल आगे लगे तो रोमांच के साथ-साथ भय भी उत्पन्न होने लगा। हम लोगों मे से कई जने ऐसे थे, जिन्होंने कभी चार कदम भी घोड़े की सवारी पहले नही की थी, शायद एक-दो जनों ने विशेषकर वच्चों ने तो घोड़े की पीठ पर कभी पैर भी नही रक्खा था। इसलिए कभी-कभी विचार उठता था कि इतनी लम्वी यात्रा कर भी पायंगे या नही, लेकिन उत्साह सवमें अपार था। जव कोई नया प्राकृतिक दृश्य आता था या झरना पहाड़ की गोद मे दूघ की भांति वहता दीख पड़ता था तो हमारी पार्टी मे से कोई-न-कोई चिल्लाकर सारी टोली का ध्यान उसकी ओर आकर्षित कर देता था।

नदी वीच मे थोड़ी देर को विछुड़ गई थी, फिर साथ हो गई और चंदनवाड़ी तक वरावर साथ गई। रास्ते मे कही मिट्टी के पहाड़ पड़ते थे, जिन पर चलने मे धूल उड़ती थी तो कही वड़े-वड़े पत्थर लांघने पड़ते थे और कही ऐसी सपाट चढ़ाई आती थी कि ढालू रास्ते पर टट्टुओं के पैर उखड़ जाने की आशंका

होती थी। मन बार-बार नई-नई परिस्थितियों और दृश्यों से गुजरता था और उसकी स्थिति बाहरी स्थितियो के अनुसार कभी कुछ, कभी कुछ होती थी।

चंदनवाड़ी पहलगाम से कुल आठ मील है। रास्ता सचमुच रोमाचकारी है। पहलगाम से प्राय लोग यहा पिकनिक के लिए जाते है। जो अमरनाथ नही जा पाते, वे भी चदनवाड़ी तक तो हो ही जाते है। रास्ते मे हमे अनेक व्यक्ति वहां जाते हुए मिले। उनमे पुरुप, स्त्रिया, बच्चे सभी थे।

रास्ता इतना संकरा है कि दो घोड़े बिना खतरे के साथ नही जा सकते। कभी-कभी हमारे टट्टू एक-दूसरे से रगड़ जाते थे, तब नीचे की ओर देखकर हृदय काप उठता था। वैसे मौत सब जगह ही रहती है, लेकिन वहां पर तो उसके दोनों हाथ हर घड़ी फैले रहते है। रास्ते से नदी तक के पहाड़ इतने सपाट है कि जरा चूके कि नीचे गये, इतने नीचे कि जहा हड्डी-पसली कुछ भी न बचे। चीड़ और देवदार यहां की शोभा है और कुलमाछ तथा जाम अपनी हरियाली से दर्शकों का मन हरा कर देते है।

प्रकृति के पक्षपात की ओर लक्ष करते हुए मैंने मुहम्मद रमजान से पूछा, "क्यो भई, यह क्या मामला है कि एक तरफके पहाड़ तो इतने रूखे-सूखे है और दूसरी तरफ के इतने हरे-भरे ?"

उसने बताया कि वहा हवा इस तरह चलती है कि इन रूखे-पहाडो पर जो कुछ होता है, उसे उड़ाकर नीचे घाटी मे ले जाती है और घाटी मे से पहाड़ों पर। यही वजह है कि इधर से उड़कर जाने वाली चीजे नदी के किनारों पर और उधर के पहाड़ो पर जम जाती हैं। उसकी बात मे सचाई मालूम हुई।

हम लोग साथ-साथ चलने का प्रयत्न करते थे, लेकिन कभी-कभी एक दूसरे से पिछड़ जाते थे या आगे निकल जाते थे।

तव मैं चिल्लाकर कहता, "मालक, हाऊ आर यू ?" (क्या हालचाल है, मालक ?)

तत्काल मालक की आवाज आती, "क्वाइट वैल।" (विल्कुल ठीक।)

यही वात कभी भाभी से पूछता तो वह कहती, "मैं नहीं जानती तुम्हारी अंग्रेजी।" और यह वह कुछ ऐसे ढंग से कहती कि हम सव हँस पड़ते।

कहीं-कहीं रास्ता वहुत भयावना होता तो मैं गुलाम नवी या दूसरे आदमी से कहता कि वह आगे चला जाय और सुधीर के टट्टू को सभाल ले, लेकिन सुधीर उसे झिड़क देता। यही हाल दूसरे लोगों का था। सव-के-सव वहादुर सवार निकले और दो-एक स्थानो पर दो-एक व्यक्तियो को छोड़ कर किसी ने भी टट्टू वालों की सहायता नही ली।

पहलगाम में सवेरे घूमते हुए हमे पहाड़ की चोटियों पर पहले-पहल वर्फ दिखाई दी थी तो हम लोग वड़े प्रसन्न हुए थे, लेकिन यहां तो जगह-जगह पर झरने जमे हुए और पहाड़ वर्फ से ढके हुए दिखाई देते थे। दूर पहाड़ पर झरने की जमी हुई लकीर ऐसी जान पड़ती थी, मानो किसी ने कलई से एक लम्वी रेखा खींच दी हो। कही-कही से वर्फ के नीचे पानी की पतली धारा वहती दीख पड़ती थी। प्रकृति की विचित्र कारीगरी थी। उसे देख कर मन अघाता नही था, फूलता था और झूमता था। नीरस व्यक्ति के मुह से भी यह फूट उठना स्वाभाविक था कि प्रकृति ने सचमुच यहा गजव किया है।

पहलगाम से चदनवाडी तक के सारे रास्ते का यही हाल है। पर्वत, नदी और वृक्ष, जहा यात्री को पुलकित करते है, वहां मानव की कृति उन्हे चमत्कृत कर देती है। कैसे दुर्गम पर्वत को चीर कर उसने रास्ता निकाला है, जिस पर चलकर वर्षो से हजारों नर-नारी प्रकृति के अलौकिक सौंदर्य-स्रोत से अमृत-

तुल्य रस ग्रहण कर अपनी आत्मा को तृप्त करते है।

चदनवाड़ी की उंचाई समुद्र-तट से ९५०० फुट है। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते है, एक-से-एक बढ़कर दृश्य आते जाते है। आठ मील का रास्ता योंही कट जाता है। लिदर नदी जो पहलगाम से वाहर आकर शेषनाग नदी कहलाने लगती है, सच-मुच नाग-सी लहराती साथ चलती है।

चंदनवाड़ी का नाम कैसे पड़ा, यह ठीक से पता नहीं चलता। संभवतः किसी समय वहां चंदन के कुछ पेड़ रहे होंगे, लेकिन अब तो वहां एक भी चंदन का पेड़ नही है। घने-घने ऊंचे वृक्ष हैं, झरने हैं और थोड़ी-सी समतल भूमि है। अमरनाथ जाने वाले यात्री प्रायः आते-जाते रास्ते में रात को यही ठहर जाते है।

पहलगाम से चंदनवाड़ी तक मोटर की सड़क वन रही है। शायद सालभर मे वन जायगी। तव मोटर में वैठे कि झट चंदन-वाड़ी पहुँचे। फुरसत के रास्ते का सौंदर्य देखने और उसका आनंद लूटने की फिर किसे सुविधा होगी ! वस्तुत. ऐसे स्थानों की महिमा तभी देखी जा सकती है जव कि वहां की यात्रा पैदल या टट्टुओं पर की जाय। त्वरित साधन तो आंतरिक एवं वाह्य शांति को भंग करते है और प्रकृति के साथ निकट का संवंध स्थापित नही होने देते।

चंदनवाड़ी हम लोग डेढ़ वजे पहुंचे। वहां फिर एक काठ का पुल पार करना पड़ा।

चंदनवाड़ी छोटी-सी वस्ती है। कुछ लकड़ी और टीन के घर वने है, जिनमे यात्री रात को ठहरते है। कुछ दुकानें है। एक पंजावी होटल है। जवतक शीत और वर्फ के कारण यहा आना-जाना असंभव नही हो जाता तवतक खूव चहल-पहल रहती है। लोग वरावर आते-जाते हैं और दिनभर यहां प्रकृति की गोद मे खेलकर लौट जाते है। जिस समय हम लोग वहां पहुंचे, काफी लोग आये हुए थे। कोई टोली कही वैठी थी, कोई कहीं। चारों ओर

चहल-पहल थी, झरने का निनाद था, मीठी-मीठी धूप थी। तबीयत खुश हो गई।

होटल के सरदारजी गरम-गरम फुलके तैयार कर रहे थे। हम लोग पहलगाम से कुछ खा-पीकर चले थे, लेकिन आठ मील की चढाई ने सारा खाया-पीया हजम कर डाला। रोटियां अच्छी तरह सिकवाईं। छककर भोजन किया।

खाना खाकर कुछ देर सुस्ताने के लिए हमारी पार्टी एक ओर झरने के किनारे घास पर लेट गई। हम लोगो को मालूम हुआ कि लगभग एक फर्लांग पर बर्फ का पुल है। विट्ठलजी और मै उसे देखने गये। देखा तो आश्चर्य-चकित रह गये। यहा-से-वहा तक बर्फ-ही-बर्फ थी और उसके नीचे नदी की धारा इस प्रकार वह रही थी, जैसे उसके ऊपर कोई भार ही न हो। हम लोग देर तक उसे देखते रहे। दो बगाली युवतिया, जिनमे से एक पतलून पहने हुए थी, पुल को देख रही थी। कुछ और भी लोग थे। मैंने लकड़ी का एक टुकडा उठाकर बर्फ मे मारा। एक बडा-सा ढेला टूट कर गिर पडा। उसे फिर तोडा और उठा सकने योग्य बना कर लेकर चल दिये। जब अपनी पार्टी के पास आये तो वहां एक भोला-भाला युवक मिला। उम्र कोई २० वर्ष की होगी। मैंने विनोद मे, साथ ही गंभीर स्वर मे, उसे सुनाते हुए कहा, "देखो तो, चालाक दुकानदार ने इस जरा-सी बर्फ के साढे तीन आने ले लिये!"

युवक झट बोल पड़ा, "अरे, आपने पैसे क्यों दिये? यहां पास में ही बर्फ का पुल है। ढेरों बर्फ योही ले आइये।"

मैंने उसी प्रकार गभीरता से पूछा, "पुल कहां है?"

"यह रहा, दो कदम पर। चलिये, मै साथ चलता हूं।"

युवक के भोले स्वभाव पर हमें हंसी आ गई। वह समझ गया कि हम लोग उसे बना रहे है।

थोड़ी देर मे विष्णुजी की पार्टी भी आ गई। उन्होने कुछ

खाया-पीया, और विश्राम किया। इतने मे हम लोग फिर चलने को तैयार हो गये। यह तय हो ही गया था कि हमारी और विष्णुजी की टोलियाँ जोजपाल म साथ-साथ ठहरेंगी, इस लिए विना उनकी प्रतीक्षा किये हम लोग चंदनवाडी से कोई ३—३।। वजे चल पड़े। जोजपाल यहा से करीव ४ मील था।

: ८ :

चंदनवाड़ी से जोजपाल

हम लोग चंदनवाड़ी से आगे की यात्रा पर रवाना हुए तो काफी लोग चंदनवाड़ी से पहलगाम को लौट रहे थे। कुछ निश्चित इधर-उधर घूम रहे थे। थोड़ी देर मे सव लौट जाने वाले थे। अमरनाथ के लिए रवाना होने वाली हमारी टोली मे हमी आठ जने थे। पहला पडाव सकुशल पार हो गया। अच्छे दृश्य मिले, अच्छा भोजन मिला, अच्छा साथ था, सवका मन प्रसन्न था।

थोड़ी दूर चलते ही वह वर्फ का पुल दिखाई दिया, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। इस यात्रा मे इतनी वर्फ को निकट से देखने का यह पहला अवसर था। सवको वड़ी प्रसन्नता हुई। अव-तक वृक्ष, नदी, प्रपात आदि के दृश्य देखते आये थे। इसलिए इस नये प्रकार के दृश्य को देखकर हृदय मे वड़ी गुदगुदी-सी हुई।

शेषनाग नदी फिर साथ हो गई। थोड़ी दूर उसके किनारे-किनारे चले। उसके वाद एक घाटी पार करनी पड़ी, जिसने सारा खाया-पीया निकाल दिया। यह 'जुआघाटी' कहलाती है। इसके वाद दूसरी घाटी आती है, जिसे 'पिस्सू घाटी' कहते है। जिस प्रकार जुए और पिस्सू आदमी को हैरान करते है, उसी

प्रकार ये दोनों घाटियां यात्रियों को वड़ा कष्ट पहुंचाती हैं। दोनों घाटियां लगभग एक-एक मील की है और रास्ता वहुत ही ऊबड़-खावड, संकीर्ण और चक्करदार है। सामने उंचाई और पीछे निचाई इतनी कि देखकर एकवारगी दिल वैठने लगता है।

भाभी को टट्टू पर रहम आया। उन्होने निश्चय किया कि घाटी को पैदल पार करेगी। वह टट्टू से उतर पड़ीं। मैंने कहा कि घाटी कठिन है, नही चला जायगा, पर वह न मानी। रमजान ने कहा, "आप चुप रहे। थोड़ी देर मे अपने आप इनको चढना पड़ेगा।" उसकी वात ठीक निकली। कुछ दूर चलने पर भाभी को इरादा वदलना पड़ा और फिर टट्टू पर सवार हो गईं। वास्तव मे चढ़ाई वड़ी भयंकर थी। हम लोग थोडे-थोडे फासले पर थे और वच्चों की तरह अपने हर्ष को व्यक्त करते हुए एक-दूसरे को पुकारते थे। सुधीर सव से आगे था और चढाई इस तरह पार कर रहा था, मानो पर्वतारोहण ही उसका धधा हो। टट्टू वाले वताते जाते थे कि हमे कहा पहुचना है। कुछ देर हम ऊपर देखते और फिर जरा पीछे निगाह डालते। दस-दस कदम पर टट्टुओ को सास लेने के लिए रोकना पडता। टट्टू ऐसे हाफते थे, जैसे धौकनी चल रही हो। इस प्रकार चलते और मुकाम करते-करते हम लोग आगे वढ़े। टट्टू वालो ने जव वताया कि हम लोग आधा रास्ता पार कर चुके है तो कुछ-कुछ चैन की सांस ली। आधी मंजिल अभी शेष थी। पीछे देखा तो विष्णुजी की पार्टी आती दिखाई दी। ऐसा मालूम होता था, मानो पतली लकीर जैसी पगडडी पर कोई चीटी के वरावर वस्तु रेग रही है। थोड़ा सुस्ताने के वाद हमारी टोली की कूच फिर शुरू हुई।

टट्टू वाले वरावर टट्टुओं को सावधान करने के लिए अपनी पारिभाषिक शब्दावली मे कहते थे, "ओश-खवरदार!" पूछने पर मालूम हुआ कि 'ओश' का अर्थ है 'होशियार'। हम

लोगों ने भी यह शब्द याद कर लिया और आगे चलकर उसका प्रयोग टट्टू-वालों से भी अधिक करने लगे।

पहलगाम मे इन मरियल टट्टुओं को देख कर आशंका हुई थी कि कैसे इतने बीहड़ रास्ते को पार करेंगे। उनकी टांगें इतनी दुबली-पतली थीं कि कहीं भी डगमगा सकती थी। रास्ते के बिल्कुल किनारे पर जब वे चलते थे तो शुरू-शुरू मे झुंझलाहट होती थी कि क्यों वे बीच में या पहाड की ओर नहीं चलते और क्यों अपनी और सवार की जान खतरे में डालते है ? लेकिन जब जुआ और पिस्सू घाटियां पार हुईं और हम लोग लगभग ११ हजार फुट की उंचाई पर सही-सलामत पहुंच गये तो इन टट्टुओं के प्रति हमारे मन में प्रशंसा और आत्मीयता के भाव उत्पन्न हो आये। क्या मजाल कि कोई टट्टू ठोकर खा जाय या गिर पड़े ! क्या मजाल कि कोई टट्टू आपको धोखा दे जाय ! आप उस पर सधे बैठे रहिये और उसे अपने हिसाब से चलने दीजिये। लगाम मे झटका देने की जरूरत नही, अन्यथा आप उसकी एकाग्रता में बाधा डालेंगे। लगाम ढीली छोड़कर चुपचाप संभले बैठे रहिये और चढ़ाई आवे तो आगे को झुक जाइये, उतार हो तो रकाबों में पैरों को तानकर पीछे को खिंच जाइये। कभी धोखा नही खायंगे।

इन घाटियों में चढ़ाई तो अधिक है ही, लेकिन रास्ते में मोड़-पर-मोड़ होने के कारण यात्रियों को बड़ी हैरानी होती है और कुछ का जी मिचलाने लगता है।

सारी घाटी हरी-भरी है। बदलू, कुलमाछ और भोजपत्र के पेड़ों ने मार्ग की भयंकरता को अद्भुत सौंदर्य प्रदान किया है।

टट्टू वालों से हमे मालूम हुआ कि सन् १९२८ तक एक दूसरा रास्ता अमरनाथ को जाता था जो बड़ा ही खतरनाक था। उसमें कहीं भी ठहरने की व्यवस्था नही थी। दैवयोग से अगर

बारिश आ गई या ओले पड़ गये तो यात्रियो को बेहद कष्ट होता था। कहते है, १९२८ मे असाधारण रूप से वर्षा हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप सैकडों यात्री मर गये। मरने वालो मे अधिकाँश साधू-महात्मा और गरीब यात्री थे, जिनके पास शीत से बचने के लिए काफी कपड़े न थे। इस घटना से काश्मीर-राज्य का ध्यान इस ओर विशेष रूप से गया। उसने उस भयंकर रास्ते को बद करा दिया और यह नया रास्ता चालू किया, जिस पर हम यात्रा कर रहे थे। इसकी विस्तृत चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। सरकार ने नया रास्ता ही नही बनवाया, चंदनवाड़ी, शेषनाग तथा पंचतरणी के पड़ावो पर यात्रियों के ठहरने के लिए लकड़ी और टीन के घर भी बनवाये तथा मेले के दिनों मे अधिक-से-अधिक सुविधाओ की व्यवस्था की।

पिस्सूघाटी सकुशल पार करके हम लोग जब चोटी पर पहुंचे और पीछे मुड़कर देखा तो एक प्रकार की भयमिश्रित प्रसन्नता हुई। कठिनाइयो को पार करने पर जिस प्रकार लोग अपने जीवन मे प्राय: विजय का उल्लास अनुभव करते है, वैसी ही मन:स्थिति इस समय हम लोगों की थी।

ऊपर आकर टट्टुओ पर से उतर पड़े और उन्हे थोडी देर विश्राम करने तथा चरने के लिए छोड़ कर, अपने पैर सीधे करने के विचार से, पैदल चल दिये। पहलगाम से टट्टू पर बैठे-बैठे, चढ़ाई-उतराई पार करते-करते, टागे अकड़-सी गई थी। पैदल चलना अच्छा लगा। धूप चारो ओर फैली थी। उंचाई पर सर्दी कुछ बढ जाने के कारण वह बड़ी अच्छी लगी।

थोडा आगे निकलने पर फिर शेषनाग नदी आगई। जगह-जगह पर उसके ऊपर मोटी बर्फ जमी थी, जिसके नीचे जलधारा बहती थी। बरफ मटियाले रग की दीखती थी, लेकिन उसके किनारे चादी की तरह चमकते थे। बड़ा मनोहारी दृश्य था।

हम लोग ज्यों-ज्यो ऊचे चढ़ते जाते थे, नदी की निचाई

नीची होती जाती थी और उसकी जलधारा नाले जैसी दिखाई देती थी। नीचे देखते डर लगता था। फिर भी हम आगे वढ़े जा रहे थे, वढ़े जा रहे थे। पिस्सू घाटी पार करते ही भाभी ने जोर से अमरनाथ की जय का नारा लगाया। उसके वाद अव तो पांच-पांच मिनट पर जय-जयकार होने लगा। सुवीर चिल्लाता था, "वोलो, अमरनाथ की . . . . ।" हम लोग कहते थे, "जय!" वह दो वार जयकार करता था और फिर अंत में कहता था, "आल राइट।" हम लोग हँस पड़ते थे। साथ अच्छा हो तो भारी-से-भारी यात्रा भी आसान लगती है। इस वात की पुष्टि यहां वहुत अच्छी तरह से हुई। इतने भयंकर मार्ग को हम हँसते-हँसते पार कर आये। जरा भी भारी न पड़ा।

मुंह मे डालने के लिए इलायची और कुछ लेमनचूस की गोलियां साथ थी। पानी की एक वोतल भी थी। वैसे पानी पीने के लिए कई जगह अच्छे चश्मे रास्ते मे मिल जाते थे।

पिस्सू घाटी पार करने के वाद से हरियाली कम होने लगी, वृक्षों की संख्या घटने लगी और दृश्यों के रूप मे परिवर्तन होने लगा। चंदनवाड़ी तक की मुग्ध करने वाली वृक्षराजि का स्थान अव सूखे पहाड़ लेने लगे, हरियाली स्वप्नवत् होने लगी।

सांप की तरह वलखाती नदी और उसीसे होड़ करते रास्ते की विभिन्न अदाओं को देखते हुए चार मील के रास्ते को साढ़े तीन घंटे में पार करके शाम को ६ वजे हम जोजपाल पहुचे। उस समय सूर्य-देवता पश्चिम में पहुंच चुके थे और अस्ताचल की ओर जाने की तैयारी में थे।

जोजपाल चारों ओर से पहाड़ों से घिरा शेषनाग नदी के किनारे एक छोटा-सा मैदान है। पेड़ का नामो-निशान नही। मेले के समय की गंदगी के अवशेष अव भी वहां विद्यमान थे। हम लोगों को वैसे वायुजन जाकर ठहरना चाहिए था, लेकिन हमे वताया गया था कि वायुजन की अपेक्षा जोजपाल में हवा

और सर्दी कम होगी । इसलिए रात को जोजपाल में ही तम्बू लगाकर ठहरना अधिक सुविधाजनक होगा । सामान अभी पीछे था और दूसरी पार्टी के आने में देर थी।

जोजपाल के मैदान मे पहुंच कर टट्टुओं से उतरे तो सर्दी के मारे हाथ ठिठुर रहे थे। चादर, ओवर कोट आदि की आवश्यकता अनुभव न होने के कारण सामान के साथ रख दिये थे। अव उनका अभाव खटका, पर कोई चारा न था। दूसरी पार्टी के एक आदमी ने पहले पहुंच कर नदी के किनारे एक छोटी-सी गुफा में आग जला ली थी। हम लोग वही चले गये। आग के चारो ओर वैठ कर तापने और बाते करने लगे। लकड़ियो के धुए से सारी गुफा भर गई। धुंए से हम लोगो की आंखे फूटी जाती थी, लेकिन वाहर सर्दी इतनी अधिक थी कि जवतक सामान न आजाय तवतक वाहर निकलने का साहस न होता था ।

: ९ :

एक रोमांचकारी अनुभव

आधा घंटे प्रतीक्षा करने के वाद दूसरी टोली आ गई और हम लोग वरवस गुफा से निकलकर वाहर आये । विष्णुजी उस टोली के नेता थे । उन सवके आ जाने से वड़ी प्रसन्नता हुई । ठंडी हवा चल पड़ी थी । सव लोग जाड़े के मारे कांप रहे थे । सूर्य छिप चुका था और अधेरा धीरे-धीरे फैलता जा रहा था । साथ ही सर्दी भी वढती जा रही थी । आसमान मे एक ओर से कुछ काले-काले वादल घिरते दिखाई दे रहे थे। उन्हे देख-देखकर हम लोगों का मन किसी अज्ञात आशंका से कापने लगा ।

थोड़ी देर मे इधर सामान पहुचा और उधर आसमान से हल्की-हल्की वूदे पड़ने लगी। टट्टू वालों ने सामान उतारा और आनन-फानन में तम्बू खड़े कर दिये। हम लोगो के पास केवल एक

तम्बू था, जिसमें आठ जनों के सोने की व्यवस्था करनी थी और उसी मे सामान भी जमाना था। नीचे घास की मोटी चटाइयां विछाकर विस्तर लगाये और एक ओर को सामान रक्खा। दिन भर के थके थे। सोचा कि निवृत्त होकर थोड़ा-वहुत भोजन कर लें और जल्दी ही सो जायं, जिससे सुवह उठकर सूर्योदय तक तैयार होकर निकल पड़ें।

निवृत्त होने के लिए नीचे उतरकर नदी तक जाना पड़ा। जव पानी में हाथ दिया तो वर्फ-सा ठण्डा था। ऐसा जान पड़ा, मानो उंगलियां कट कर गिर गई हों। एक अंगीठी मे थोड़े से कोयले जलवाये और उस पर पानी गरम होने को रख दिया। भोजन करने बैठे। मार्तंडजी ने खाना नही खाया। उनके सिर में दर्द हो रहा था। हमारा भोजन खत्म हुआ ही था कि पड़-पड़ करता जोर का पानी आ गया। जिधर सामान रक्खा था, उधर तम्वू इकहरा था। इसलिए पानी छनछन कर अंदर आने लगा। डर हुआ कि कहीं सामान न भीग जाय। और चीजों की तो उतनी चिंता नही थी, जितनी कि आटे और कोयलों की थी। वरसातियां मंगाकर सामान पर डालीं। यह सव कर रहे थे कि पानी के साथ जोर के ओले पड़ने लगे। तम्वू के ऊपर ओलों की पड़पड़ाहट ऐसी प्रतीत होती थी, मानो ईंट-पत्थर गिर रहे हों। हम लोग सिमटे हुए अंदर अपने-अपने विस्तरों पर पड़े थे। एक लालटेन टिमटिमाती जल रही थी। पानी के वचाव के लिए तम्वू को अच्छी तरह से वंद कर लिया। एक तो उंचाई फिर छोटी-सी जगह में आठ जने, लालटेन का धुआ और ऊपर से ओले, सवका जी घुटने लगा। थोड़ी देर में देखता क्या हूं कि पानी मेरे विस्तर के नीचे आने लगा। असल मे तम्वू के सहारे-सहारे एक नाली वना दी जाती है, जिससे पानी आवे तो उस नाली में होकर निकल जाय। हमारा तम्वू खड़ा करने वालों ने जल्दी में पुरानी वनी नाली का ध्यान नही रक्खा था। उसी नाली से होकर पानी अंदर आने लगा। एक नई परेशानी सामने आ गई। यों किनारे

पर सबके बिस्तर भीग रहे थे, कारण कि तम्बू कुछ हद तक ही पानी को रोक सकता था, लेकिन जब बिस्तर के नीचे पानी आने लगा तब विशेष चिंता होने लगी। मेरे बिस्तर के नीचे से होकर वह नाली तबू के अंदर आई थी। उसमे पानी भरा था, चटाई बिल्कुल भीग गई थी। निकलने का रास्ता न होने के कारण पानी और बढ़ता जा रहा था। एक नई हैरानी पैदा हो गई। एकाएक हममे से एक ने सोचा कि जिधर से नाली मे पानी आ रहा है उधर से बिस्तर के नीचे बरसाती की रोक लगा दी जाय। रोक लगाई, पर उससे कितनी बचत हो सकती थी।

रात को बारह बजे तक यही स्थिति रही। पानी और ओले पडते रहे। हम लोग भगवान का नाम लेते कभी बैठते कभी लेट जाते। मार्तण्डजी के सिर मे दर्द तो पहले से था ही, उन्हे सांस लेने मे भी कुछ कठिनाई होने लगी, लेकिन वे चुपचाप पड़े रहे। उन्होंने कुछ कहा नही।

आधी रात के बाद जब ओले थमे और पानी बद हुआ तो त्रयोदशी का चंद्रमा आकाश मे चमकने लगा। बाहर से मार्तंडजी की आवाज आई कि जरा बाहर आकर देखिये, कैसा बढिया दृश्य है! तबीयत बड़ी गिरी-सी थी, दिनभर की टट्टू की सवारी और चढाई की थकान के कारण देह टूट रही थी। अन्य-मनस्क भाव से बाहर आया। पर बाहर जो देखा उससे तबीयत खिल उठी, सारी थकान दूर हो गई। चादनी छिटकी हुई थी और चारों ओर बिछी बर्फ चादी-सी चमक रही थी। दूर-पास सबकुछ सफेद नजर आता था। तम्बू के चारो ओर बर्फ़ की मोटी-सी तह लगी थी। ऊपर से दूध-सी चांदनी छिटकी थी और शुभ्राकाश मे गोलाकार चाद अपनी आभा खुले हाथों बिखेर रहा था। सप्तऋषि मुस्करा रहे थे। जीवन का वह अपूर्व अनुभव था। सब लोगों ने उठ-उठ कर वह अद्भुत दृश्य देखा।

ओले-पानी वंद हो जाने पर विष्णुजी भी अपने तम्वू से वाहर निकल आये। वह भी परेशान थे, क्योंकि इतने ओले और वर्षा का सामना करना होगा, इसकी कल्पना किसी ने भी नहीं की थी। उनका एक तम्वू हवा के जोर से उड़ गया था, कपड़े भीग गये थ, खाना ठीक से नही वन पाया, न वे लोग कुछ खा ही सके थे। जो हुआ, उससे अधिक चिंता इस वात की होने लगी कि यही हाल रहा तो आगे की यात्रा कैसे पूरी होगी। एक भय मन मे समा गया।

विष्णुजी के पास दो तम्वू और दो रावटी थी। उन्होंने कहा कि हम लोगों को एक तम्वू मे असुविधा हो तो कुछ लोग उनके तम्वू में आ जायं, लेकिन इतनी रात मे सामान लेकर इधर-से-उधर जाना ठीक नही समझा और थकान के मारे हिम्मत भी नहीं थी इतनी उठा-धरी करने की। उनके प्रस्ताव के लिए धन्य-वाद दिया और शेप रात अपने तम्वू में काल-कोठरी की भांति व्यतीत की। विस्तर भीग गये थे और तम्वू में इतनी जगह नही थी कि हम लोग पूरे पैर भी फैला लेते। नीद तो किसी को आई नही। रात्रि की नीरवता को चीरता शेपनाग नदी का स्वर निरंतर सुनाई पड़ रहा था।

सवेरे उठे तो वर्फ काफी पिघल गई थी, फिर भी इधर-उधर अव भी विखरी पड़ी थी। जिस वर्फ ने रात को हम लोगों के हृदय को भयाक्रांत कर दिया था वही अव हमारे मनोरंजन का साधन वन गई थी।

सर्दी इतनी अधिक थी कि हमारे दांत वजते थे। नदी मे हाथमुह धोने गये तो ऐसा लगा कि हाथ गल गये। झट ओवरकोट की जेव मे डाल लिये, लेकिन कहां गरम होते थे!

अंगीठी पर चाय के लिए पानी रख दिया और हम लोग विस्तर वांधने लगे। इतने मे विष्णुजी की पत्नी ललितावहन आईं और उन्होंने वताया कि विष्णुजी ने तो आगे जाने का इरादा

छोड़ दिया है और यही से वापस लौट जाना चाहते है। मैंने पूछा, "आपकी क्या इच्छा है ?"

बोली, "हम लोग तो अमरनाथ जाना चाहते है। यहां आकर लौट जाने में भला क्या बुद्धिमानी है ?"

विट्ठलजी ने आशा दिलाते हुए कहा, "आप लोग चलने की तैयारी करे। हम विष्णुजी को मना लेंगे।"

ललिताबहन चली गई। उनके जाने के कुछ ही देर बाद गुलाम नबी ने बताया कि रात को हम लोगों के चार टट्टू कहीं चले गये है। सुनकर स्तब्ध रह गये। अब क्या होगा ? गुलाम नबी ने कहा, "रात को पानी और ओले पड़ने से गजब हो गया। बचाव को कुछ था नही। बेचारे टट्टू अपनी जान बचाने के लिए कही भाग गये। रमजान और कुछ लोग उन्हें तलाश करने गये हैं।" हमारी समझ में नही आ रहा था कि टट्टू न आये तो आगे की यात्रा कैसे होगी ?

हम लोग रात को चर्चा कर रहे थे कि तम्बू में बैठे-बैठे जब हम पर ऐसी बीत रही है तो बेचारे टट्टू वालों और टट्टुओं को तो न जाने कितनी मुसीबत का सामना करना पड रहा होगा, जिनकी रक्षा के लिए नीचे तग गुफा और ऊपर पत्थरों को जोड़ कर और मेले के समय की पड़ी टीन को ऊपर रखकर बनाई गई छोटी-सी मढ़ी के अतिरिक्त और कुछ न था। उन्होंने जैसे-तैसे रात काटी, नीद तो उनको भी कहां से आती ! सोने को जगह थी ही नही। टट्टुओं को खोजते रात मे भटकना पड़ा, सो अलग।

बिस्तर बांध कर हम लोग बाहर आये और विष्णुजी के तम्बू की तरफ गये। विष्णुजी निवृत्त होकर आये ही थे। मैंने हँसते हुए कहा, "क्यों विष्णुजी, क्या हालचाल है? सुना है, आप तो लौटने की तैयारी कर रहे है ? जरा से में घबरा गये क्या ?"

उन्होंने मुस्कराते हुये कहा, "जरा-सी बात थी, महाराज !

यहां तो जान निकलने की नौवत आ गई। आप लोगों का पता भी नही चला कि हम है कहां ? जव ओले पड़ रहे थे, आप लोग तो आराम से सो रहे थे। हम लोगों का तो एक तम्वू ही उखड़ गया। सारे कपड़े भीग गये। वड़ी मुश्किल से खड़ा किया। सारी रात जागते काटी है। वाज आये ऐसी यात्रा से, महाराज ! हमने तो लौटने का तय कर लिया है।"

विट्ठलजी ने कहा, "आप भी क्या वात करते है विष्णुजी, ऐसी ही चीजे तो यात्रा को मजेदार वनाती है।"

विष्णुजी वोले, "मजेदार तो वनाती है, पर जान भी तो फालतू नही है। अपन तो अव आगे जाने के नही। वारिश के कारण आगे का रास्ता जरूर विगड़ गया होगा। इतनी ही मुसीवत काफी है। स्वाद चख लिया। और मुसीवत कौन उठावेगा ?"

मैंने उन्हे जोश दिलाते हुये कहा, "विष्णुजी, कैसी वात करते है आप ! आपसे अच्छी तो ललितावहन है, जिन्होंने अभी तक हिम्मत नही हारी और अमरनाथ जाने को तैयार है।"

"तो उनको आप लोग ले जायं। अपने राम तो वापस ही जावेगे।"

हम लोगों ने उनको वहुत समझाया और उनके मन का डर कम करने की काफी कोशिश की। तव विष्णुजी गंभीर होकर वोले, "देखिये साहव, आप हिम्मत की वातें तो करते है, लेकिन क्या ठिकाना कि आगे फिर वारिश आ जाय ! रास्ते मे वरफ हुई तो ? रास्ता रपटीला हुआ तो ? कोई दुर्घटना हो गई तो ? कौन जिम्मेदार होगा ?"

लेकिन हम लोगों की पार्टी के उत्साह और आगे वढ़ने के निश्चय तथा विट्ठलजी की विश्वास-भरी वातों से विष्णुजी ढीले पड़े। वोले, "वड़ी जिम्मेदारी है साहव, इतनी वड़ी पलटन को मुसीवत-भरी यात्रा कराने मे।"

विट्ठलजी वोले, "आप वेफिक्र होकर चलें। विश्वास रखें,

अव कुछ होगा ही नहीं ।"

विष्णुजी फौरन वोल उठे, "और होगा भी तो आप करेंगे क्या ? रात को ही अपने क्या कर लिया था ?"

"अजी, आप चलिये तो सही, भगवान का नाम लेकर । सव ठीक होगा ।" विट्ठलजी ने और मैंने कहा ।

विष्णुजी का मन जाने और न जाने के वीच झूल रहा था । सवका आग्रह देखा तो वह जाने को तैयार हो गये । उनकी तैयारी तो हो ही रही थी । वापस जाते या आगे जाते । उन्होंने कहा कि आप लोग चलिये । हम जरा नाश्ता करके आपके पीछे-पीछे आते है ।

हम लोगो ने अपने तम्वू मे लौट कर शेप सामान को ठीक किया । गुलामनवी ने खुशखवरी दी कि टट्टू मिल गये हैं । जान-मे-जान आई । हम लोगो ने जलपान किया, टट्टू वालो ने सामान लादा और कूच को तैयार हो गये ।

लेकिन धीरे-धीरे आकाश में वादल घिरने लगे । विष्णु-जी ने पुकारा, "यशपालजी, देखते है, यह क्या हो रहा है ? आप लोग हमारी मुसीवत करने पर तुले हुए मालूम होते है !"

हम लोगों ने विना किसी भय के उत्तर दिया,"आप चिन्ता न करें । वस, जल्दी रवाना हो जायं । भगवान सव ठीक करेंगे ।"

टट्टुओ को देखकर दया आती थी । रात भर वेचारे भीगते और भूखे भटकते रहे थे । न वहा वचने को कोई पेड़ था, न चरने को घास । जाने कैसे, उन मूक प्राणियो ने रात काटी होगी, और टट्टू वाले तो रात भर उनको खोजने मे ही भागते फिरे थे । सुवह फिर आगे की मजिल के लिए तैयार । उनकी यह हिम्मत और फुर्ती देखकर मन उनकी प्रशंसा से भर गया और उनकी तुलना मे अपने ऊपर शर्म आई ।

विष्णुजी अभी तैयार न थे । उनकी पार्टी खाने-पीने में लगी थी, चाय पी रही थी । हमारी पार्टी टट्टुओं पर सवार होकर चल

0152 3

दी। मैंने सोचा कि कही हम लोगों के निकल जाने पर इन लोगों का विचार न वदल जाय। अतः मै अपनी पार्टी का साथ छोड़ कर विष्णुजी की पार्टी के साथ जाने को रुक गया। मै वार-वार उनके टट्टू वालों से टट्टू कसने को कहता था, पर वे सुनते ही न थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो वे भी जाने से आनाकानी कर रहे हैं। तब मैंने उनको डाटकर कहा कि देर हो रही है। टट्ट तैयार करो। इस पर अलकसाता-सा एक टट्टूवाला उठा और इधर-उधर फैले टट्टुओं को इकट्ठा कर लाया। तवतक विष्णुजी और उनकी पार्टी कलेवा कर चुकी थी। टट्टू कसकर आते ही रवाना हो गये। क्षितिज पर जहा निगाह जाती थी, वादल-ही-वादल दिखाई देते थे। विष्णुजी की पार्टी के एक साथी ने कहा, "मौसम वड़ा खराव हो रहा है। देखो, कैसे वादल छाये हुए हैं।"

मैंने कहा, "ये वादल वरसने वाले नही है।"

"रात भी तो ऐसे ही थे।"

"जी नही, रात के वादल तो काले थे।"

विष्णुजी ने कहा, "अव तो चल ही पड़े है। वादल काले हों या सफेद, जो होगा देखा जायगा।"

हम लोग आगे वढ चले। मैंने एक वार मुड़ कर जोजपाल को देखा। एक क्षण मे रात का सारा दृश्य आंखों के आगे घूम गया। मैंने मन-ही-मन उस अदृश्य शक्ति को प्रणाम किया, जो प्रकृति और मानव की प्रत्येक क्रिया का संचालन करती है और जिसकी मर्जी के विना एक पत्ता भी नही हिल सकता।

: १० :

कुट्टाघाटी, शेषनाग और वायुजन

हमारी टोली आगे निकल गई थी और जव विष्णुजी की टोली रवाना हुई तो वादल काफी घिर आये थे। आगे वढ़ने का

उत्साह और निश्चय होने पर भी मन आशंकित हो उठा था।

मैदान पार करने के बाद फिर चढ़ाई शुरू हो गई, लेकिन दृश्य अब पहले जैसे न थे। किसी भी पर्वत पर पेड़ देखने को भी न थे। सारे पहाड़ नंगे खड़े थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे हृदय की विशालता के साथ-साथ अपरिग्रह का पाठ भी पढ़ा रहे हों। कह रहे हों कि आदमी ज्यों-ज्यों ऊपर उठता है, दुनिया का आडम्बर कम होता जाता है और किसी किस्म का लगाव नहीं रह जाता है। हमारे ऊपर मेघाच्छन्न अनन्त आकाश था, दोनों ओर नगी पहाड़ी चोटियां, पतला मार्ग और पहाड़ों के बीच वेग से बहने वाली शेषनाग नदी। सब भयानक था, लेकिन विशालता और भव्यता लिये हुए। महान साहस अथवा अचल श्रद्धा के बिना यहां कोई दो कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता।

जोजपाल से कुछ आगे चल कर कुट्टाघाटी आई। इसकी लम्बाई लगभग एक मील थी, लेकिन चढाई इतनी सख्त और खतरनाक थी कि भलो-भलों के होश गायब हो सकते थे। रास्ता बहुत ही ऊबड-खाबड़ था। पत्थर-पर-पत्थर पड़े थे। ऐसे में जब एक प्रवाहित झरने को पार करना पडा तो मन एक साथ सिहर उठा। बनिहाल की घाटी हम लोगो ने बस में बैठकर पार की थी और उसकी सबसे ऊंची चोटी पीरपंचाल पर पहुंचकर लगा था, जैसे हम लोगो ने कोई गढ जीत लिया हो। पिस्सू घाटी को पार करने में भी बड़े आनंद का अनुभव हुआ था, लेकिन अब तो हम ११,६०० फुट की उंचाई पर थे और इच्छा होती थी कि उंचाई पर भले ही चढ़े, पर रास्ता इतना जानलेवा तो न हो। पत्थर पर टट्टू जिस समय अपना पैर रखता था तो ऐसा जान पड़ता था कि अब फिसला, अब फिसला। और वहां फिसलने का अर्थ होता था सीधे पाताल-दर्शन। पर वाह रे टट्टुओ, एक के बाद एक, ऐसे सधे हुए पैर रखते थे कि

क्या मजाल जो कहीं चूक हो जाय। उन्हें देखकर मेरे मन में विचार आया कि हम लोग अपने जीवन में ठोकर इसलिए नहीं खाते कि मार्ग असमतल होता है, बल्कि इसलिए खाते हैं कि हम धीरज के साथ और साधकर कदम नहीं उठाते। यहां अगर कोई भी टट्टू उतावली से कदम उठावे तो निश्चय ही स्वयं डूबे और सवार को भी डुबो दे। हम लोग बहुत-सी चीजें मूक प्राणियों से सीख सकते हैं, बशर्ते कि हमारे पास देखने को खुली आंखें और सीखने को जिज्ञासा हो।

हम लोग ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते थे, बादलों का जमघट गहरा होता जाता था। कुट्टाघाटी जैसे-तैसे पार हुई। हम लोगों ने टट्टूवालों से कह दिया था कि भोजन शेषनाग पहुंचकर करेंगे, लेकिन बादलों को देखकर इच्छा होती थी कि जितना आगे निकल जायं, उतना ही अच्छा है।

कुट्टाघाटी के बाद चौपानों का मुकाम आया। यहां भेड़ों का रेवड़ मिला। उसमें कुछ बकरियां भी थीं। देखकर अचरज हुआ कि जहा पेड़ का नाम नही, आदमी के दर्शन नही, वहां इतनी भेडे ! काफी बड़ा रेवड़ था, कोई हजार के आसपास रही होंगी, लेकिन उनकी रखवाली के लिए दो या तीन व्यक्ति थे, जिनमे एक छोटी-सी लड़की भी थी। भेड़ें बैठी जुगाली कर रही थी और कुछ एक-दूसरे पर गर्दन टिकाये सो रही थीं। इन भेड़ों के शरीर तो अपने यहा की मैदानी भेड़ों जैसे थे, लेकिन बाल कुछ अधिक लम्बे थे और सींग मुड़े और गर्दन की ओर झुके हुये थे। बकरियों के शरीर पर खूब बड़े-बड़े बाल थे। असल मे प्रकृति बड़ी समझदार है। जहां जिसको पैदा करती है, देश-काल के अनुसार उसी प्रकार के साधन उसके लिए जुटा देती है। यदि प्रकृति ने बकरियों को इतने बड़े बाल न दिये होते तो वे बिचारी जाड़े में ठिठुर कर मर न जाती ! ऐसा अन्याय प्रकृति के हाथों कैसे हो सकता था ?

हम लोगों को देख कर भेड़ें विचलित नहीं हुईं। ज्यों-की-त्यों बैठी रही। हम लोग एक ओर होकर आगे बढ़ गये।

इसके पश्चात एक छोटी घाटी और पार की। शेषनाग नदी हम लोगों के साथ ही चल रही थी। अब वह इकली थी। उसकी शोभा में चार चाद लगाने वाले घने वृक्ष पीछे छूट गये थे और वह एकाकी पथिक की भांति अकेली, नितांत अकेली, पर्वतो के वक्ष को चीर कर अपने मार्ग पर चल रही थी। अचंभा होता था कि इतनी उचाई पर इतनी तीव्र प्रवाहिनी नदी का क्या प्रयोजन है? पर प्रकृति की माया को कौन जान सकता है?

जोजपाल से शेषनाग कुल चार मील है, लेकिन ८ वजे के चले हम लोग वहां १०-३० पर पहुंचे। इस स्थान का वड़ा धार्मिक महत्व है। यहा एक झील है, जिसमे से हमारे अवतक के रास्ते की चिरसगिनि शेषनाग नदी निकलती है। झील का आकार काफी लम्वा-चौड़ा है और उसका जल नीलवर्ण का वड़ा ही स्वच्छ है। ठण्डा इतना कि हाथ डालना मुश्किल। यह झील पहाड़ों की गोद में है। इधर-उधर पहाड़ो की चोटियों पर वर्फ लदी थी। हमने अनुमान किया कि यह शायद पिछले रात की वर्षा और ओलों के कारण है, लेकिन पूछने पर मालूम हुआ कि वहा वर्फ हमेशा जमी रहती है। झील समुद्र-तट से ११,७३० फुट ऊंची है।

झील से लगभग एक मील पर वायुजन स्थान आता है। यहां हवा वड़ी तेज चलती है और इसीलिए इसका यह नाम पड़ा है। यहा सर्दी भी वहुत अधिक है। यात्रियो के ठहरने के लिए यहा टीन के अस्तवल जैसे घर वने है। दो रेस्ट-हाऊस हैं। स्थान वडा रमणीक है। सामने हिमाच्छादित पर्वत, नीचे शेषनाग झील जिसमें से शान से वहती शेपनाग नदी। वहुत से यात्री यहां आकर लौट जाते है।

हम लोगों की पहली टोली यहीं आकर रुक गई। विष्णुजी

की टोली के साथ मैं भी वहां पहुंच गया। अव सलाह होने लगी कि भोजन के लिए यहा रुका जाय या आगे वढ़ा जाय। आकाश अव भी वादलों से लदा खड़ा था। विष्णुजी ने मुस्कराते हुए जव वादलो की ओर इशारा किया तो हम लोगों ने कह दिया, "देखिये अव तो निकल पडे है। इन वादलो को देखकर अपना निश्चय वदलने वाले है नही। सव लोग साथ है। जो वीतेगी, सवके साथ वीतेगी। भगवान सव ठीक ही करेगे।"

हम लोग एक चट्टान पर वैठे थे। भूख लगी थी और कुछ मुह चलाते जाते थे। वादलों को देख कर और वर्षा की आशंका की कल्पना करके रुकन को जी नही होता था। वस भी सामान के टट्टू पीछे थे। उम्मीद थी कि दस-पांच मिनट मे आ जायंगे, लेकिन सर्वसमिति से सलाह हुई कि रुकना ठीक नही होगा। यही तय किया कि सामान के टट्टू आ जायं तो सव साथ आगे को चल दे।

सर्दी यहां कड़ाके की थी, पर उसकी ओर ध्यान देने का जैसे किसी के पास अवकाश न था। हम लोग कभी वहां की निराली शोभा को निरखकर पुलकित होते थे तो कभी वादलों को देखकर चिंतित हो उठते थे। पूर्वी-पश्चिमी कोने के पहाड़ का दृश्य तो अद्भुत था। उसकी वनावट वड़ी आकर्षक थी, साथ ही वर्फ उसपर कुछ इस ढंग से पड़ी थी कि हम लोगों की निगाह उस पर से हटती ही न थी। वादल उसपर घिर रहे थे। वहां एक वड़ी कन्दरा का वोध होता था। हम लोगों ने पर्वतराज के उस महान दृश्य का चित्र लिया। यदि सूर्य भगवान के दर्शन एक मिनट को भी हो जाते तो उस दृश्य का वड़ा ही भव्य चित्र आता।

इस स्थान के विषय मे एक धर्म-कथा प्रचलित है। कहते हैं, किसी जमाने में इस पर्वत पर एक वलवान राक्षस रहता था, जो वायु के रूप वाला था। वह देवताओं को वड़ा कष्ट देता था। उससे त्रस्त होकर सारे देवता शिवजी के पास गये, उनकी स्तुति

की; शिवजी प्रसन्न हुए। देवताओं ने राक्षस के त्रास की कहानी कह सुनाई। शिवजी ने कहा, "मैंने उसे वरदान दिया है कि मैं उसे नही मार सकता। आप लोग विष्णुजी के पास जाओ।" तब देवो ने क्षीरसागर पर जाकर विष्णु की स्तुति की। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा, "मै अभी उस राक्षस का नाश कर डालूंगा।" देवता चले गये। तभी पाताल से शेषनाग प्रकट हुए। विष्णुजी ने उनपर चढकर आज्ञा की कि हे सर्पराज, तुम हजार मुख से वायु का पान करो। सर्पराज ने ऐसा ही किया और वायुरूप राक्षस का भक्षण कर लिया। कहते है, उसी समय से इसका नाम शेषनाग पड़ गया। बाद मे एक और दैत्य ने यहा उपद्रव किया और इन्द्र ने अपने वज्र से इसी स्थान पर उसका हनन किया। तब से यह स्थान वायुवर्जन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कालांतर मे वायुवर्जन से बिगड कर वायुजन हो गया। जो हो, स्थान बडा सुन्दर है।

: ११ :

फिर मुसीबत

वायुजन मे हम लोग मुश्किल से आधा घंटा ठहरे होगे कि फिर चल पड़े। आगे की यात्रा अब और कठिन दिखाई पड रही थी। पेड़ों का साथ जोजपाल मे छूट गया था। यहा आकर नदी से भी विछोह हो गया। अपने मायके पहुंचकर और अपनी जननी की गोद मे सिर रखकर वह तो प्रसन्न हो गई, लेकिन हम लोगों को उसका वियोग दुखदाई हो गया। परन्तु शोक-सताप के लिए समय और सुविधा कहा थी! हम लोगो ने दूर से ही झील, नदी और हिमाच्छादित पर्वत को मन-ही-मन प्रणाम किया और आगे बढ गये। वायुजन की उंचाई लगभग तेरह हजार फुट है।

कुछ दूर तक उतराई आई। पर्वतो मे उतराई भी चढ़ाई

से कम मुसीबत की नहीं होती। यात्री जानते हैं कि उतराई का अर्थ होता है फिर चढ़ाई। दूसरे उतराई पर अपने शरीर को साधने में अधिक होशियारी और संतुलन की आवश्यकता होती है।

यहां से पंचतरणी आठ मील थी। वहां पहुंचकर रात वितानी थी। हम लोग भगवान से प्रार्थना कर रहे थे कि कैसे हो पंचतरणी पहुंच जायं। वहां यात्रियों के ठहरने के लिए पत्थर और टीन के कुछ घर वने हुए हैं। वहां पहुंचने पर वर्षा भी आ जाय तो अधिक परेशानी नही होगी।

आगे के रास्ते मे झरने बहुत आते है और उन्हे वार-वार पार करना पड़ता है। मेले के समय उन पर पुल वनाये गये होंगे, लेकिन उनमे से अव अधिकांश टूट चुके थे और उन्हे पार करने के लिए जलधारा मे होकर जाना पड़ता था। वायुजन से चलकर पहला प्रपात आया। सुधीर सवसे आगे था। उसका टट्टू पुल के रास्ते आगे वढ़ा जा रहा था और करीव-करीव सिरे तक पहुच गया था। पुल टूटा था। एक कदम और वढ़ा तो वह और सुधीर धड़ाम से नीचे पानी मे गिरेंगे, इस आशंका से मै कांप उठा; लेकिन सुधीर ने तत्काल लगाम खीची, और टट्टू भी कहां उस खतरे को उठाने वाला था! इतने मे पीछे से लपक कर टट्टूवाले ने लगाम पकड़ ली, मोड़कर नीचे ले आया और धारा को पार करा दिया।

हम लोगों ने चंदनवाड़ी पर पहला वर्फ का पुल देखा था, वाद मे कुछ स्थानों पर नदी के ऊपर वर्फ जमी देखी, लेकिन अव जो दृश्य सामने आये, उनके आगे-पीछे के सव दृश्य फीके पड गये। यहां अधिकांश उपत्यकाएं वर्फ से जमी पड़ी थी।

टट्टूवालों ने वताया कि वर्फ पर चलना खतरे से खाली नही होता। अगर वर्फ कही से टूट जाय तो टट्टू और सवार एकदम नीचे चले जायं और दोनो का पता भी न चले। इस प्रकार

जाने चली जाने की कई घटनाएं हम पढ़ चुके थे। कई स्थानो पर वर्फ टूटी दिखाई दी और उसके वीच वड़े-वड़े छेद मिले।

झरना पार करने के बाद फिर चढ़ाई शुरू हुई। अब रास्ता इतना सकरा और ढलवां था कि इधर-उधर देखते डर लगता था। यहा हमे और यात्री भी आगे जाते हुए मिले। मन में संतोष हुआ कि चलो, आगे जो खतरा आयगा उसका मिलजुल कर मुकावला कर लेगे।

दृश्य यहां के वडे भव्य और निराले थे। पर्वत हिममंडित, उपत्यकाएं वर्फ से ढकी और रास्ता संकीर्ण। जैसे-तैसे एक पहाड़ पार किया। टट्टू वालो ने दूर एक पहाड की ओर संकेत करके वताया कि हमे उस चोटी पर जाना है। उन्होने यह भी कहा कि यह चढ़ाई सबसे कठिन है।

वादलो का रंग अव और गहरा हो गया था और ज्योही हम लोगों ने कठिन चढ़ाई पर पैर रक्खा कि वूदावांदी शुरू हो गई। पाठक सोच सकते हैं कि उस समय हमारे मन पर क्या वीती होगी। मेह से बचने के लिए न कोई रूख, न कोई गुफा, न कुछ सहारा। हम लोगो ने वरसातियां ओढ़ ली और घवराहट को हृदय मे छिपाये आगे वढने लगे। वर्षा के साथ-साथ कोहरा इतना घना था कि गज भर आगे का भी रास्ता नही दीखता था। लेकिन दृश्य घड़ी-घड़ी वदलते थे। कभी कोहरा इतना गहरा हो जाता था कि रास्ता नही सूझता था, कभी इतना साफ हो जाता था कि मार्ग की भयंकरता स्पष्ट दीख जाती थी और दिल दहल उठता था।

हम लोग चुपचाप चले जा रहे थे। इतने मे मार्ग की नीरवता को भंग करती हुई और भयकरता की ओर से घ्यान हटाती हुई एक सुरीली और कांपती हुई वारीक-सी आवाज कानों में पड़ी, 'जय शिवशंभो', 'जय शिवशंभो', 'जय शिवशंभो धरणीशं', 'वंदे गंगाधरमीशं', और सारी पार्टी उत्साह से 'जय शिवशंभो',

'जय शिवशंभो' के नाद का उच्चार करने लगी, मानो सबको एक बड़ा भारी सहारा मिल गया—रास्ते की भयंकरता से ध्यान हटाने और दुर्गम पथ पर हिम्मत से बढ़े चलने का। महागुनस की ऊंची चोटी पर जबतक सब पहुच नही गये, बादलों और बौछारों के बीच यह शिवाराधना निरंतर जारी रही। बीच-बीच मे कभी सुधीर, तो कभी भाभी, कभी मैं तो कभी कोई दूसरा, 'अमरनाथ की जय' के नारे जोर से लगाते थे। हमारी यात्रा की यह बड़ी भयंकर घड़ी थी। मालक आगे या पीछे हो जाते तो मैं चिल्लाकर पूछता, "मालक, हाऊ आर यू ?" तत्काल सुनाई पड़ता, "क्वाइट वैल।"

इस प्रकार हमारी पार्टी आगे बढ़ती जा रही थी, लेकिन हम लोग मन मे कुछ डर-से रहे थे कि विष्णुजी और ललिताबहन की पार्टी को आग्रह करके लाना ठीक हुआ या नही। ईश्वर न करे, कही कुछ हो गया तो बड़ी बदनामी पल्ले पड़ेगी।

विट्ठलजी ने कहा, "यह यात्रा खूब याद रहेगी।"

मैंने कहा, "ये सब बाते न हों तो यात्रा मे मजा क्या आया !"

हमारी बात सुनकर पीछे से आते हुए विष्णुजी की आवाज सुन पड़ी, "वाह यशपालजी, फंसाया न आपने बुरी तरह। हमने पहले ही समझ लिया था कि आप अपनी आदत से बाज नही आवेगे। देखिये, अब चल तो पड़े है, कहां पहुंचते है ? अमरनाथ या अमरपुरी ?"

मैंने कहा, "विष्णुजी, हम सब साथ है, हम-सफर साथी है। आप जहां जायंगे हम भी तो वहीं चल रहे है ?"

और मैंने पुकारा, "मालक, हाऊ आर यू ?" उधर से जवाब आया, "क्वाइट वैल।"

और सुधीर चिल्ला उठा—"बोलो, अमरनाथ महाराज की . . ."

सब लोग चिल्लाये, "जय !"

वर्षा वरावर होती रही। रास्ता इतना रपटीला हो गया कि कही-कही हाथ-हाथ भर टट्टुओं के पैर, उनकी पूरी सावधानी के वावजूद, आगे फिसल जाते थे। हम लोगों के दिल कांप उठते थे। अच्छा यह था कि कोहरे के कारण निचाई प्राय. वहुत साफ नही दीखती थी और उचाई भी जव कभी ही सामने आती थी, पर स्थूल आंखों की इस विवशता के होते हुए भी सूक्ष्म आंखे तो वरावर भयंकरता को देख ही रही थी। जैसे थका पथिक वार-वार अपने साथी से पूछता है कि ओ भाई, अभी कितना और चलना है, वैसे ही हम वार-वार अपने टट्टूवालों से पूछते थे, "क्यों भाई, अभी कितनी चढ़ाई और है ?"

रोज के अभ्यस्त वे लोग कह देते थे, "अभी क्या है वावूजी ! अभी तो आधे भी नही आये है।"

उनके लिए यह कह देना सहज था, लेकिन हमपर उसका क्या असर होता था, यह हमी जानते है। हम तो यह सुनना चाहते थे कि वस चढ़ाई अव खत्म होने ही वाली है, भले ही चढ़ना चार मील और क्यो न वाकी हो !

प्रकृति का प्रकोप कहिए या कृपा, वारिश निरंतर जारी रही, पर हम लोग एक क्षण को भी कहीं नही रुके। सारा वायुमण्डल जितना गभीर था, उतना ही निस्तव्ध। उस निस्तव्धता को भंग करने वाला 'जय शंभो' का स्वर वड़ा भला मालूम होता था। पूरे जोर से जव हम लोग 'अमरनाथ की जय' वोलते थे तो ऐसा जान पड़ता था कि भय को हम लोग कील डालेगे, लेकिन चढ़ाई द्रौपदी के चीर की भांति वढती ही जा रही थी, और हमारी सारी पार्टी चली जा रही थी, चली जा रही थी। इस सारे भय के वातावरण मे भी सुधीर का टट्टू सवसे आगे था। कई वार मैंने तथा पार्टी के और लोगो ने सोचा कि हम लोग अपना टट्टू आगे कर ले, उससे कहा भी, लेकिन उसने हम लोगो की एक न सुनी और अपना टट्टू वरावर आगे ही रखा।

टट्टूवालों ने बताया कि यहां कुछ ऐसे फूल होते हैं, जिनकी खुशबू से आदमी को बेहोशी-सी हो जाती है, चक्कर तो बहुतों को आ जाते हैं, लेकिन हमने उनकी बात की ओर ध्यान न दिया। न हममें से किसी को ऐसा अनुभव ही हुआ। शायद जिस मुसीबत में से गुजर रहे थे, वही इतनी बड़ी मालूम दे रही थी कि दूसरी ओर ध्यान देने का औसान ही किसी को न रहा था।

लगभग पौन रास्ता इसी अवस्था मे पार किया। उसके बाद कोहरा एक साथ दूर हो गया। हम लोगों ने सामने, पीछे और इधर-उधर देखा। ऐसा लगता था कि हम लोग किसी जादू के जोर से वहां पहुंच गये है। दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़, पहाड़ों के बीच गहरी खाई। खाई की तलहटी तक निगाहही नहीं पहुंचती थी। यहां एक विशेषता ने हम लोगों का ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट किया। इधर कोई भी दो पहाड़ एक रंग के न थे। कोई टूटे-सूखे पेड़ की तरह और उसके रंग का था तो कोई रेल के जले कोयले जैसा, कोई मटमैला, तो कोई कत्थई! यह बड़ी विचित्र बात थी। जगह एक, वायुमण्डल एक, आकाश एक, सूर्य का ताप, सर्दी और बर्फ भी एक, लेकिन पर्वतों के नाना रूप और वर्ण हैं। प्रकृति की लीला अपरम्पार है।

चारों ओर विलक्षण दृश्य थे। पानी बंद नही हुआ था, पर उसका वेग कम हो गया था। बरसाती को सिर पर थोड़ा पीछे की ओर खीच कर इधर-उधर के ये दृश्य मजे से देखे जा सकते थे।

घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे ही हम लोगों के जूते, मोजे तथा धोतियां कीचड़ से लथपथ हो गई थी। जाड़ा भी खूब था। कपड़े भीग रहे थे। टट्टूवालों की तो हमसे भी ज्यादा मुसीबत थी। उनको पैदल चलना पड़ रहा था। उनके पास अपने को बचाने के लिए छाते या बरसातियां भी न थी। वे बुरी तरह भीग रहे थे। उनके फटे-फटाये जूते पानी मे भीग कर और मिट्टी से सनकर

काफी भारी हो गये थे, फिर भी वे विना एक शव्द मुंह से निकाले चुपचाप चल रहे थे। उन्हें देखकर मन मे एक विचार वार-वार उठता था। इस शरीर को आदमी जैसा चाहे, वना सकता है।

राम-राम करते महागुनस की यह महान चढ़ाई पूरी हुई। ऊपर पहुंचे तो मालूम हुआ कि हम लोग लगभग १६,००० फुट की उंचाई पर पहुंच गये है। वहा एक पत्थर पड़ा था, जिस पर १४,७०० फुट लिखा था। रमजान ने वताया कि पत्थर पहले वहुत निचाई पर था, लेकिन वाद मे वहां से उठा कर किसी ने यहा डाल दिया।

ऊपर पहुंचते-पहुचते टट्टू पस्त हो गये थे। हम लोग भी थोड़ी देर को उनपर से उतर पड़े। फिर जो नीचे निगाह डाल कर देखा तो सहसा विश्वास नही हुआ कि उस भयकर चढ़ाई को हम पार करके आये है। ऐसा लगा, मानो अमरनाथ की जयकार ने हमे आराम से लाकर उस जगह पहुचा दिया।

रमजान ने कहा कि यहां से आगे निल नाम की एक प्रकार की घास मिलती है। उसे खाने से टट्टू फौरन मर जाता है; लेकिन यहां वाले टट्टू उसे पहचानते है। उस तक जाते नही। यात्रा के दिनों मे नये टट्टू अक्सर घोखे मे खा लेते है और मर जाते है।

चढाई पार करते समय हमे वीच-वीच मे पीले रंग के करन-फूल जैसे छोटे-छोटे फूल दिखाई दिए थे। रमजान ने वताया था कि उन्ही की खुशवू से वेहोशी-सी होती है, लेकिन हम लोगों पर तो वैसा कुछ भी असर नही हुआ।

शिखर पर पहुंचकर अधिक नही रुके। पंचतरणी अभी पांच मील थी। भूख कड़ाके की लगी थी। झोले से निकालकर एक-एक, दो-दो विस्कुटो और वादामो से मन वहलाया, फिर चल पड़े। अव पंचतरणी तक उतराई-ही-उतराई थी। चार-साढ़े

चार हजार फुट हमें उतरना था।

वादलों के कारण धूप का नामोनिशान न था। चारों ओर पहाड़ो पर बर्फ-ही-बर्फ दिखाई देती थी। कही बर्फ की मोटी-मोटी लकीरों को देखकर भ्रम होता था कि वे दूध की धाराएं है, कही नुकीली चोटी को बर्फ से ढकी देखकर ऐसा लगता था कि किसी ने उस पर चांदी का खोल चढ़ा दिया है। अव भय मन से विल्कुल निकल गया था और हम शांत भाव से प्रकृति की उस अनुपम छटा का आनंद ले सकते थे।

पेड़ों की भांति पक्षियों के भी यहां दर्शन नहीं होते। शेषनाग मे कही से टिटहरी की-सी आवाज आई थी, लेकिन दिखाई कोई भी पक्षी नही दिया था। अपने जीवन मे मैंने अनेक पहाड़ी स्थल देखे है, लेकिन इतना दुर्गम और इतना निर्जन स्थान मैंने अवतक नही देखा। प्रकृति का रूप यहां जितना अलौकिक था, उतना ही भयावना। चारों ओर वृक्षहीन, हरियाली-रहित पर्वत और सुनसान इतना कि अपने हृदय का स्पन्दन भी आप सुन सके।

रात के जगे थे, चढ़ाई से थके थे, पर मन उमग से भरा था। दुर्गम रास्ता पार कर चुके थे। वारिश थम गई थी। पंचतरणी के झोंपड़े दूर से नजर आ रहे थे।

: १२ :

अंतिम पड़ाव

अव हम लोग जल्दी-से-जल्दी पंचतरणी पहुंच जाना चाहते थे, लेकिन महागुनस से आगे उतराई-ही-उतराई थी और रास्ता वहुत ही रपटीला था। हम लोगों को कदम-कदम पर अनुभव होता था कि अव गिरे, अव गिरे, पर भगवान की कृपा से कोई दुर्घटना नही हुई। हम सव साथ-साथ जा रहे थे। इस मुसीवत के

वक्त मे मार्तण्डजी का टट्टू भी थोड़ी देर को अपनी शरारत भूल गया था।

आगे पहाड़ विल्कुल नगे थे, लेकिन दृश्य वडे सुन्दर थे। यहा जैसी उपत्यकाएं पीछे कम ही मिली थी। वस्तुत. इस यात्रा की सवसे वडी विशेषता यही थी कि दृश्य वरावर नये-नये दिखाई देते थे। जिस प्रकार चित्रपट मे एक के वाद दूसरा, नया दृश्य आता है, वही हाल इस प्रवास में था। कोई भी एक दृश्य दूसरे से नही मिलता था। और क्या मजाल कि आप एक पर्वत को देखकर दूसरे की कल्पना कर सके!

उंचाई के कारण महागुनस की चोटी पर सर्दी वहुत थी। हवा अव भी ठण्डी थी, लेकिन उतराई पर ठण्डक कुछ कम हो गई। पीछे के रास्ते की चर्चा करते हुए हम लोग आगे वढ़े जा रहे थे। अमरनाथ का जय-घोप अव भी जल्दी-जल्दी और अधिक ऊचे स्वर मे सुन पड़ता था।

रमजान ने वताया कि महागुनस की चढाई वैसे ही वड़ी कठिन है, लेकिन वर्षा मे तो वह वहुत ही खतरनाक हो जाती है। कभी-कभी वूढ़े या कमजोर आदमी जान से हाथ धो वैठते है। टट्टुओ का भी कभी-कभी दम टूट जाता है।

मैंने कहा, "रमजान, जिसको भगवान वचाता है, उसको कोई भी नही मार सकता।"

"यह तो है ही, वावूजी।" रमजान वोला, "लेकिन हम लोग तो हमेशा देखते है कि यहा कितनी मुसीवत होती है।"

उतराई का यह रास्ता 'पोषपथ' कहलाता है। उसे पार करने के वाद तीन नाले आते है। तीनो का नाम एक ही है—केलनाड। इनके पानी मे वडा वेग था। दाई ओर वरफ का एक पर्वत आया। इधर रास्ते मे एक घोडा मरा पडा था। रमजान ने कहा कि सर्दी के मारे अकड़ गया दीखता है। दो-एक दिन पहले कोई यात्री दल आया होगा, उसीका यह हो सकता है। उस ओर ज्यादा ध्यान

दिये बिना हम आगे वढ़ चले।

आगे नगारखां आया। वहां एक छोटी-सी चट्टान थी, जिसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे बरफ के पहाड़ थे। किसी ने वताया कि पहले यात्री यही तक आते थे और यही पर शिवलिंग के दर्शन होते थे। किसी ने यह भी कहा कि नगारखां अमरनाथ का पहरेदार था। टट्टू वालो ने नगार खां की जय बोली और हमसे भी वुलवाई।

अव पंचतरणी के घर साफ दिखाई देने लगे थे। उन्हे देख कर बड़ा सुख मिला। पानी विल्कुल बन्द हो गया था। वादल भी साफ होते जा रहे थे। मन दौड़-दौड़ कर उन घरो तक पहुंच जाता था। जी होता था कि टट्टू हवा मे उड जाय और वहां पहुंच जायं, पर वे तो अपनी ही रफ्तार से जा रहे थे।

पंचतरणी सिन्ध नदी के किनारे पर है। वहां नदी की पांच धाराएं है, जिनके कारण उनका नाम पंचतरणी पड़ा है। हम लोगों ने पहली धारा पुल से पार की। तीन धाराओं में थोड़ा पानी था। अन्तिम धारा काफी चौड़ी थी और पानी का वहाव भी उसमे वहुत तेज था। सुधीर सवसे आगे था। मैंने टट्टूवाले को आवाज दी और कहा कि वढ़कर उसके टट्टू की लगाम पकड़ ले, लेकिन टट्टूवाला पहुंचे, उससे पहले ही सुधीर ने टट्ट को पानी मे छोड़ दिया। पानी टट्टू के पेट तक आया, कुछ और सोचें कि उससे पहले ही सुधीर आगे बढ़कर पार हो गया।

पंचतरणी ४॥ वजे पहुंचे। भूख के मारे वुरा हाल हो रहा था, लेकिन खाने को साथ में कुछ था ही नही। सामान वाले टट्टू पीछे आ रहे थे।

पंचतरणी पहुंचकर हम लोगों ने ठहरने का स्थान देखा। छोटे-छोटे घुड़साल जैसे लंवे कमरे थे, जिनके ऊपर टीन थी, लेकिन फर्श कच्चे थे। ऐसे ही एक कोठे मे अपना डेरा जमाया। उसके एक कोने मे चूल्हा था, जिसमे किसी टट्टू वाले ने आग,

जला रखी थी। हम लोग तापने लगे। अचानक हमने देखा कि मार्तण्डजी हमारी टोली मे नही है। वाहर आकर दूर-दूर तक निगाह दौड़ाई, लेकिन दिखाई नही दिये। सव लोग चिन्ता करने लगे कि वह कहां रह गये? कही उनका टट्टू गिर-गिरा तो नही पड़ा? और कोई बात तो नही हो गई? थोड़ी देर राह देखकर रमजान को उन्हे खोजने वापस भेजा। कुछ समय वाद देखते क्या है कि हँसते हुए मार्तण्डजी चले आ रहे है? पहुंचकर उन्होने बताया कि मैदान में जहां कुछ देर टट्टू चरने के लिए ठहरे थे वहां सव लोग तो उतर पड़े, पर वह टट्टू की पीठ पर बैठे-बैठे ऊंघने लगे। कुछ देर वाद और लोग तो अपने-अपने टट्टू पर बैठकर आगे चल पड़े। पर उनका टट्टू घास चरता रहा और वे ऊंघते रहे। थोड़ी देर वाद जव आख खुली तो देखा कि टट्टूराम मजे मे चर रहे है और सव साथियो का पता नही। साथ विछुड जाने से घोड़े ने अपनी चाल और धीमी कर दी। वह उनके चलाये चलता ही नही था। वे घोड़े की पीठ पर से उतरे पडे और उसे खीचते हुए लाने लगे। रास्ते मे रमजान मिला और तव वह टट्टू को भगाता हुआ लाया।

टट्टूवालों ने वताया कि ऊपर भी कुछ कमरे है, जो अच्छे है। थकान के मारे चला नही जाता था, फिर भी ऊपर चढकर गये। देखा, एक लम्बा हाल-सा था, जिसमे एक ओर को अमरनाथ से लौटा एक परिवार भोजन कर रहा था, दूसरी ओर को वही के सरकारी मजूर खाना पका रहे थे। हमने उनसे कहा कि वे उस खाली करके नीचे वाले स्थान पर चले जायं तो अच्छा होगा। हम सव लोग एक साथ रह लेंगे, लेकिन वे लोग हमारी भाषा नही समझते थे। एक टट्टूवाले ने समझाया तो उन्होने इन्कार कर दिया। तव लाचार होकर नीचे नदी-किनारे ही तम्बू खड़ा करने का तय किया।

आकाश अव एकदम निर्मल हो गया था और इतनी धूप निकली थी कि देखकर हृदय आनन्द से उछल पड़ा। वर्पा के वाद

धूप वैसे भी अच्छी लगती है, लेकिन यहां १२,००० फुट की उंचाई पर तो धूप का अपना महत्व था।

यह घाटी 'सिध की घाटी' कहलाती है और प्राकृतिक सौदर्य की खान है। चारों ओर पर्वत प्रहरी की भाति खड़े है और सिन्ध की धाराएं कलकल निनाद करती हुई इस शान से बहती है कि देखकर यात्री मुग्ध हो जाता है और रास्ते की थकान भूल जाता है।

लगभग आधा घंटे वाद सामान आ गया। हम लोगों ने तम्बू खड़ा करवाया और चटाई बिछवाकर विस्तर खोल दिये। जो कपड़े बहुत भीग गये थे, उन्हे सुखाने डाल दिया। जूते धूप मे रख दिये और मोजे भी उतार डाले। धूप से यों भी आराम मिल रहा था, लेकिन इतनी कठोर साधना के बाद मिलने के कारण उसका मूल्य कही अधिक वढ़ गया था।

विष्णुजी की पार्टी भी रात भर के लिए अपना घर बनाने मे व्यस्त थी। सब लोग सही-सलामत पहुच गये थे, इसका संतोष था। मुस्कराते हुए विष्णुजी घूम रहे थे। वोले, "यशपालजी, आप सबके भरोसे पहुच ही गये यहा तक ! अब कल की यात्रा और वाकी है। अव तो मौसम वड़ा सुहावना हो गया है। कल भी ऐसा ही रहे तो बड़ा आनद आवेगा।"

"कल इससे भी अच्छा हो जायगा। अमरनाथ की यात्रा को चले है, साहव ! पहले परीक्षा देनी होती है। वह तो हो गई और हम सव उसमे पास हो गये। किसी ने हिम्मत नही हारी। अव तो खा-पीकर विश्राम करें और सुवह भगवान का नाम लेकर अन्तिम मंजिल के लिए जल्दी ही निकल पड़े।" मैंने कहा।

हम लोगों ने भी सव सामान जमा कर भोजन की तैयारी की। सबकी राय रही कि जो जल्दी तैयार हो जाय वह भोजन वने। चावल और पंचमेल साग ही संभव था और सर्वसम्मति से यही तय पाया गया। पूड़ियां साथ मे थीं ही। पहले चाय वनी,

मेरे और भाभी के लिए काफी। फिर साग चढ़ाया गया। स्टोव जलाने की बहुतेरी कोशिश की, लेकिन सर्दी इतनी थी कि बार-बार स्पिरिट डालकर गरम करने पर भी उसकी नली गरम नही होती थी। काफी देर तक सिर खपाने पर भी वह नही जला।

अन्नदा ने बताया कि उसके सिर मे बड़ा दर्द हो रहा है। थोड़ी देर मे उसने कहा कि जी मिचला रहा है। कहने के कुछ ही मिनट बाद जोर की उल्टी हुई, बड़ी गंदगी निकली। खाने-पीने में कुछ ज्यादती हुई मालूम देती थी। दो बार उल्टियां फिर हुईं। हर बार गदगी निकली। मैंने कहा, "चलो, पेट साफ हुआ।" लेकिन वह घबराती थी और कहती थी, "मुझे पहाड़ मत दीखने दो। पहाड़ देखकर चक्कर आते हैं।" उसे तम्बू मे बिस्तर पर सुलाया और सामने का पर्दा बन्द कर दिया। विट्ठलजी ने उसके सिर में तेल की मालिश की। थोड़ी अमृतधारा दी। इस सबसे तबीयत काबू मे आ गई। इस यात्रा मे खाने-पीने का संयम बेहद जरूरी है।

चावल-साग तैयार हुए। दिन भर के भूखे तो थे ही, अच्छी तरह भोजन किया। हमारे निवास के निकट ही एक झरना था, जिसका पानी बड़ा अच्छा था। वही से लाकर पानी पिया।

खा-पीकर निबटे तो लगभग ८॥ बजे थे। आकाश मे तारे बिछे हुए थे। उनके बीच चतुर्दशी का चन्द्रमा शोभायमान हो रहा था। दूध-सी चांदनी फैली थी। विट्ठलजी कुछ अधिक थकान अनुभव कर रहे थे। वह तो लेट गये। मार्तण्डजी, भाभी,आदर्श और मैं, बहुत देर तक बाहर नदी के किनारे टहलते रहे। रात का वह बड़ा ही अद्भुत दृश्य था। सामने का पहाड़ बर्फ और चंद्र-ज्योत्स्ना के कारण अकल्पनीय सौंदर्य से परिपूर्ण था। अन्य पर्वत भी हिममडित थे। उनके मध्य पंचतरणी के थोड़े-से घर और चार-पाच तम्बू प्रकृति के साथ मानव की आत्मीयता का बोध करा रहे थे। सिंध बड़ी गंभीरता से बह रही थी। एक महापुरुष का कथन है—"जीवन मे मैं केवल उन्हीं

क्षणों को स्मरण रक्खूंगा, जो उल्लास-पूरित थे।" यह क्षण वास्तव मे उन्हीमें से एक था। उसकी शोभा का वर्णन शब्दों द्वारा कर सकना संभव नही है। काफी देर तक हम लोग घूमकर उसका आनंद लेते रहे। ९॥-१० वजे के लगभग सो गये।

शाम को एक घटना हुई। हम लोग चाय तैयार कर रहे थे कि एक वंगाली वहन अपनी वांह पकड़े हुए, बहुत घवराती-सी, आई। मैने पूछा, "क्या बात है ?"

बोली, "मै टट्टू से गिर गई हूं।"

"चोट तो नही आई ?" हम लोगों ने एक स्वर मे पूछा।

"शायद वांह मे कुछ लगी हो।"

वह सर्दी और सदमे से कांप रही थीं। मैने एक तरफ को सरक कर अगीठी के पास उनके लिए जगह कर दी। वह आकर वैठ गई। तापने लगी। कुछ देर में सुस्थिर हुई। भाभी ने उनकी बांह पर विक्स लगाया और थोड़ी मालिश की। उसके वाद साड़ी के पल्ले को गरम करके उनकी वांह को जरा देर सेका भी। जव उन वहन को इससे चैन पड़ा तो वह कहने लगी, "आपने मेरी वड़ी सेवा की।"

"वहनजी," भाभी ने कहा, "इसमें मैंने सेवा क्या की ? यह तो सवका कर्त्तव्य है—एक-दूसरे की मदद करना। अमरनाथ की वड़ी कृपा हुई जो आपके ज्यादा चोट नही आई !"

वड़े तड़के उठे। वैसा सुहावना प्रभात वहुत कम देखने में आया है। सूर्योदय हो रहा था और आकाश मे वादल का एक टुकड़ा भी ढूढे नही मिल रहा था। इतनी कठिन यात्रा के वाद सुनहरी धूपवाला वह प्रभात ! सव लोग मारे खुशी के उछल पड़े। कहने लगे कि अगर दिन भर ऐसा ही रहे तो यात्रा वड़ी सुन्दर रहेगी।

हम लोग निवट-निवटा कर विष्णुजी की पार्टी में जाकर कुछ

देर तक विनोद करते रहे। तय हुआ कि हमे अब यहा देर नही करनी चाहिए। तैयार होकर झटपट चलना चाहिए, जिससे दर्शन करके जल्दी ही लौट आवे और भोजन करके वापसी की यात्रा शुरू कर दे। अमरनाथ यहां से केवल चार मील था। आने-जाने के आठ मील, वहां कुछ समय और फिर पंचतरणी से वायुजन के आठ मील। इस प्रकार सोलह मील का रास्ता शाम तक तय करना था और रात को वायुजन मे ठहरना था। टट्टूवाले तो कल ही आग्रह कर रहे थे कि हम लोग थोड़ी देर विश्राम करके अमरनाथ चले चले और दर्शन करके पंचतरणी लौट आवे, जिससे बड़े तड़के उठकर वापस चल पड़े। लेकिन हम लोगो ने उनका यह प्रस्ताव नही माना। हम लोग थके हुए थे, फिर हमें लौटने की जल्दी भी क्या थी ! टट्टूवाले चाहते थे कि उनका एक दिन बच जाय। प्रायः यात्री तीसरे दिन अमरनाथ से लौट जाते हैं, पर हम लोग चौथे दिन लौटनेवाले थे। श्री वसंतकुमार बिड़ला का ड्राइवर, कल सुबह ही पहलगाम से रवाना होकर रात को अमरनाथ के दर्शन करके पंचतरणी पहुंचा था। वह आज वापस पहलगाम पहुच जाने वाला था। उसकी हिम्मत देखकर हम दंग रह गये।

सुबह काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। पहलगाम में मिले कई परिचित यात्री यहां मिल गये। वह डाक्टर भी मिले, जिन्होने सुधीर को देखा था। और भी बहुत से स्त्री-पुरुप थे। सबको देखकर हर्ष हुआ। परदेस में जितने साथी हों, अच्छा है।

मार्तण्डजी को सास की अब भी शिकायत थी। मुझे भी जोजपाल से कुछ ऐसा लग रहा था कि हवा मे आक्सीजन की कमी ह। इसलिए जब-तब मुह खोल कर गहरी सास लेने की आवश्यकता पड़ती थी। रात को कुछ न खाने और हल्का पेट होने के कारण अन्नदा चंगी हो गई। सुधीर भी बिल्कुल ठीक था। हम लोग जल्दी-जल्दी तैयार हुए। जब से पहलगाम से चले थे,

नहाने की वारी अवतक नही आई थी। दाढ़ी वढी थी, लेकिन उसके साथ न्याय करने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। अव तो एक ही अभिलापा थी, जल्दी-से-जल्दी अमरनाथ पहुँचे।

जलपान कर रहे थे कि इतने मे गुलाम नवी ने वताया कि हमारे चार टट्टू गायव हैं। वह वहुत परेशान था। उसने कहा, "कल एक आदमी से झगड़ा होगया था। उसीकी वदमाशी मालूम होती है।"

हमने पूछा, "अव क्या करोगे ?"

"आप फिकर न करे।" वह वोला, "आप सामान तो ले ही नही जा रहे ह। हम आपको चार लद्दू दे देगे। जवतक आप लौटेंगे तवतक खुदा ने चाहा तो हम टट्टुओं को खोज निकालेगे।"

एक चिंता फिर सवार हो गई।

: १३ :

साधना सफल हुई

जलपान करके अमरनाथ के लिए रवाना हुए उस समय ८ वजे थे। खूव सुहावनी धूप फैली थी। आज पूर्णिमा थी और यह आखिरी मंजिल थी। हृदय उल्लास और उमंग से उछल पड़ता था। रास्ते की थकान और परेशानी से पिछले दिन जो उदासी-सी छाई थी, वह दूर हो गई थी और उसका स्थान प्रसन्नता के वातावरण ने ले लिया था।

पंचतरणी से चले तो रास्ता नदी के किनारे-किनारे था, और शुरू मे कठिन प्रतीत नही होता था। अमरनाथ केवल चार मील था और हम लोगों को ऐसा लगता था कि अव पहुंचे, अव पहुंचे, लेकिन वस्तुत. मंजिल उतनी सरल न थी।

थोड़ा आगे निकलने पर मार्तण्डजी ने आवाज दी। वोले, "जरा पीछे तो देखिये।" उस अलौकिक दृश्य को मैं अपने जीवन

मे कभी नही भूल पाऊगा। दो सूखे पर्वतों के बीच वर्फ से ढका एक महान पर्वत था, जो उस पर्वत-शृखला का मुकुट-सा प्रतीत होता था। उसे देखते-देखते तृप्ति नही होती थी। मेरे पास केमरा था, पर सूर्य का रुख अनुकूल न था। अत फोटो तो न ले सका, पर हम लोग आगे वढते जाते थे और पीछे मुड-मुडकर उस अपूर्व दृश्य को देखते जाते थे। जी अघाता न था।

सिन्ध नदी काफी दूर तक साथ गई। रमजान ने कहा था कि पचतरणी के वाद अमरनाथ तक वर्फ-ही-वर्फ मिलेगी। पंच-तरणी से कुछ ही फासले पर हमे वर्फ पर होकर चलना पडा। रोमाच हो आया, पर टट्टुओ के कदम इतने सधे थे कि वे खटाखट पार कर गये। एकाध जगह दो-एक घोड़े कुछ फिसले भी, पर सभल गये।

पचतरणी से कुछ आगे चलकर पहले भैरो घाटी आई। टेढ़े-मेढेपन और ऊवड़खावड के लिए हम लोग पिप्सूघाटी और कुट्टाघाटी तथा उचाई के लिए महागुनस को भुगत चुके थे, लेकिन यह घाटी तो खतरे मे सवसे वाजी मार ले गई। चढाई आरभ होते ही टट्टूवालो ने कहा, "अव आप लोग उतर पड़िये। टट्टू छोड़ दीजिए।" टट्टुओ पर वैठे-वैठे ही हम लोगो ने ऊपर जो निगाह डाली तो रोंगटे खडे हो गये। इसलिए नही कि उचाई अधिक थी, वल्कि इसलिए कि रास्ता वडा ही ढलवा और फिसलना था और पहाड़ वलुआ था।

ऊपर उचाई पर कई यात्री जा रहे थे। वे और उनके पीछे चलने वाले टट्टू खिलौने जैसे प्रतीत होते थे। वनिहाल की घाटी जव हम लोगों ने पार की थी तव भी कुछ ऐसी ही अनुभूति हुई थी। दूर की मोटरें, खिलौने सरीखी लगती थी और उनका नाम विनोद मे सुधीर ने 'चावी की मोटरें' रख दिया था। लेकिन दोनो मे एक अंतर था। वहा हम लोगों की जान गाडी चलाने वाले ड्राइवर के हाथ मे थी, लेकिन यहा तो अपनी जान की

जिम्मेदारी अपने पर या भगवान् पर थी। यहां मनुष्य स्वय अपना ही चालक था, लेकिन रक्षक भगवान् था।

सिन्ध नदी अनासक्त भाव से वहती दीख पड़ रही थी। जाने कितने यात्री अबतक उस मार्ग से गुजर चुके है, जाने कितने आगे गुजरेगे। उनकी घबराहट को देखकर यदि वह भी घवरा जाय तो कहा ठिकाना लगेगा ! वह तो मानों कहती थी ·

"आदमी आवे, चाहे जावे,
लेकिन मै तो सदा-सर्वदा इसी प्रकार बहती रहूंगी।"

सच भी है। जीवन का अर्थ गति है, गतिहीनता का अर्थ है मृत्यु। धीर-गभीर गति से वहती हुई सिंध यात्रियो को यही संदेश दे रही थी।

हम लोगों ने टट्टू छोड़ दिये, लेकिन हठी सुधीर नही माना। वह टट्टू पर से उतर तो पडा, लेकिन टट्टू को उसने नही छोडा। उसकी लगाम पकड़कर खीच कर ले चला। हम लोगो ने उसे समझाया, पर उसने किसी की एक न सुनी और आगे वढता चला गया। हम लोग भी सावधानी से पैर रखते-रखते आगे बढ़ने लगे। मोड़ इतने अधिक और इतने ढलवा थे कि कही-कही दिल दहल जाता था। हम लोग ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते थे, नदी की उपत्यका उतनी ही गहरी होती जाती थी। नीचे देखने मे डर लगता था। पठानकोट से जाते समय रामवन से आगे काफी दूर तक ऐसा ही रास्ता पड़ा था, लेकिन वहां की ऊचाई और यहां की ऊचाई मे काफी अंतर था। दूने से भी अधिक का समझिये। यहा हम लोग करीव १२ हजार फुट पर थे।

हमारे हाथ मे लाठिया थी, जिनके नीचे लोहे की नुकीली कीले लगी थी, जो धरती मे जम कर फिसलने से वचाने मे सहायक होती थी। उन्ही के सहारे धीरे-धीरे हमारी टोली आगे वढ़ती जा रही थी।

वीच-वीच मे रुककर हम लोग पीछे देख लेते थे। पचतरणी

की वह हिममंडित मुकुट जैसी पर्वत-माला अव भी उतनी ही भव्य और आकर्षक दिखाई देती थी।

तीन-चौथाई घाटी पार कर पाये होंगे कि देखते क्या हैं कि सामने से एक सज्जन अकेले वापस आ रहे हैं। पास आकर देखा तो हम लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह तो पहलगाम में मिले वही डाक्टर थे, जिनके प्रोत्साहन ने हम लोगो को असीम साहस और बल प्रदान किया था और हमने यात्रा का निश्चय किया था।

हमे देखते ही डाक्टर मुस्कराये। उनका चेहरा वहुत ही थका था और शरीर भी शिथिल-सा हो रहा था। वोले, "हमारा तवीयत वहोत विगड़ गया है। हम ऊपर नही जा सकता।"

मैंने कहा, "डाक्टर!"

वह वोले, "आप जायं! हम नही जा सकेगा। हमको हाईब्लड प्रेशर है। हमारा हार्ट (दिल) . . .।"

उनकी विवशता को अनुभव करते हुए भी मैंने कहा, "डाक्टर, अव तो यात्रा का अंत है। थोड़ी हिम्मत और कीजिए।"

वड़े अनुराग से आभार प्रकट करते हुए डाक्टर ने कहा, "आप लोग जाइए और अच्छी तरह से दर्शन कीजिए।"

मेरी आखें छलछला आई। टोली के सव लोगों के हृदय विचलित हो गये। डाक्टर ठेठ दार्जिलिंग से आये थे, हजारो मील का रास्ता तय करके अमरनाथ के दर्शन करने, लेकिन इतने निकट आकर भी अमरनाथ के दर्शन से वंचित रह गये। उनके दिल में इसका मलाल अवश्य रहा होगा, पर उन्होंने प्रकट नही होने दिया।

हम लोग आगे वढे। इस घटना से मन भारी-सा हो गया।

ऊपर से कुछ यात्री और कुछ टट्टू आते हुए दिखाई दिये। रास्ता वहुत संकरा होने से हम लोगों को लगा कि टट्टुओ का जरा-सा धक्का लगा कि नीचे पाताल मे पहुंचेगे, लेकिन टट्टू

वालो ने एक सुविधाजनक स्थान पर उन्हे रोक लिया था, जिससे हम लोग निरापद निकल जायं।

जैसे-तैसे भैरो घाटी पार हुई। यह अतिम घाटी थी। आगे उतार-चढाव आये, लेकिन वे इतने खतरनाक न थे। हां, एक स्थान ऐसा अवश्य आया, जहा से गुजरते समय रोमाच हो आया। रास्ता छोटा-सा तो था ही। इसपर भी एक जगह एक बड़ा-सा पत्थर रास्ते मे निकला हुआ था। उससे वचकर निकलने में मुश्किल से एक फुट रास्ता रह गया होगा। टट्टू का जरा-सा पैर टकराता या चूक जाता तो जो वीतती उसकी कल्पना सहज ही नही की जा सकती।

अव आगे वर्फ-ही-वर्फ दीख पड़ने लगी। अमरनाथ की घाटी, यहां से वहां तक फैली थी। दृश्य अपूर्व थे। प्रकृति हंसती थी। आदमी का दिल उल्लास से वांसों उछलता था। टट्टूवालों ने दूर एक पहाड़ की कदरा की ओर इशारा करते हुए कहा, "वह ह अमरनाथ की गुफा।" हमने ध्यान से देखा, पर निश्चित स्थान का अनुमान न कर सके। फिर भी शरीर में स्फूर्ति आ गइ और ऐसा लगा कि टट्टू भी अव तेज चलने लगे है, मानो दर्शनो क लिए हमारी भांति वे भी आतुर हो।

रास्ते मे यहां-से-वहां तक वर्फ विछी थी। गैल वर्फ से ढकी थी और हम लोगो को कई स्थानों पर दूर तक वर्फ पर होकर गुजरना पडा।

सुधीर अपने टट्टू को तेज दौड़ाये जा रहा था। वीच मे ललितावहन की डांडी खाली चल रही थी। इसलिए कुछ दूर को सुधीर और कुछ दूर को अन्नदा उसपर सवार हो गये थे, लेकिन डांडी के लोग तो अपनी रफ्तार से चलते हैं, जव कि टट्टू की लगाम अपने हाथ मे होती है। गति का उसमे अनुभव होता है। अतः थोड़ी देर वाद दोनों फिर अपने-अपने टट्टुओं पर सवार हो गये। ज्यो-ज्यों अमरनाथ निकट आ रहा था, सुधीर अपने

हाथ की पतली संटी से टट्टू को कभी मार कर तो कभी धमका कर अपनी तीव्रतम गति से चलने को वाध्य कर रहा था। उसके पीछे मै था। वाद मे शेप लोग। सभी को अमरनाथ पहुचने की जल्दी थी।

हमारी टोली अव बार-वार 'अमरनाथ की जय' वोलती थी। भाभी या सुधीर एक साथ तेजी से चिल्लाते, "वोलो अमरनाथ की . "

और हम सव समवेत स्वर मे कहते, "जय !"

पर्वतो के प्रति मेरे मन मे हमेशा से आकर्पण रहा है। पर्वतों को देखकर मै सवकुछ भूल जाता हूं और उनकी विराटता के आगे मेरा मस्तक नत हो जाता है। यहां पर्वतराज के दर्शन कर ऐसी धन्यता अनुभव होती थी, जैसी पहले शायद ही कभी हुई हो। पेड़ो का यहां भी नामोनिशान नही है, न कही वस्ती है, न कही आदम, न आदमजात। लगता है, जैसे सृप्टि के आदिकाल मे पहुच गये है, जव मनुष्य अकेला था, नितात अकेला और निरुद्देश्य इधर-उधर भटका करता था।

जाने क्या-क्या विचार उस समय मन मे आते और जाते रहे। समूची टोली उस भयोत्पादक विराट सौदर्य से कुछ इतनी अभिभूत हो गई थी कि उसकी अभिव्यक्ति के लिए हमारे पास शव्द नही रह गये थे। नीचे मार्ग मे वर्फ, पर्वतो पर वर्फ, ऊपर नीलाकाश, जिसके मध्य सूर्य देवता अपने पूर्ण वेग से चमक रहे थे।

: १४ :

जय अमरनाथ!

आखिर अमरनाथ पहुंच गये। सवसे पहले सुधीर पहुंचा। गुलाम नवी तथा उसका एक साथी सीधे रास्ते से निकल कर

वहां पहुंच कर हमारी राह देख रहे थे। अन्य अनेक यात्री भी वहां आ गये थे। कुछ गुफा में पहुच गये थे, कुछ चढ़ाई पर थे।

गुफा से पहले कुछ गज दूर, अमरावती गंगा वहती थी। इसके जल मे सफेद रंग की मिट्टी होती है, जो पवित्र मानी जाती है। यात्री उसे प्रसाद के रूप मे साथ लाते है। इस नदी मे यात्री स्नान करते है और तव अमरनाथ के दर्शन को ऊपर जाते है।

हमारी पार्टी मे से मार्तण्डजी और भाभी ने अमर गगा मे हाथ-पैर धोये और आचमन किया। सरदी के डर से तथा पता न होने से साथ मे कोई कपड़ा नही रखा था कि जिसे पहन कर स्नान करते। मार्तण्डजी ने वताया कि पानी पचतरणी जैसा ठडा नही था और अगर कपडे होते तो मजे मे नहाया जा सकता था। दो-एक पजावी और एक वंगाली महाशय स्नान कर रहे थे।

हम लोग टट्टू से उतर कर गुफा की ओर वढे। वैसे उंचाई अधिक नही थी, पर सांस उखाड देने वाली थी। वीच मे सास के लिए रुकते हुए हम गुफा मे पहुचे और वहां जो देखा, आंखे उस पर सहज विश्वास न कर सकी। १२७२९ फुट की उचाई पर इतनी विशाल गुफा की कल्पना कौन कर सकता था ? गुफा की लम्वाई ५० फुट, चौड़ाई ५५ फुट और ऊचाई ४५ फुट है। पहलगाम से यहा तक इतने पहाड मिले थे, लेकिन उनमे कही भी छोटी-वडी एक भी कन्दरा देखने मे नही आई थी। तव किस अदृश्य शक्ति ने यहा इतनी विशाल गुफा का निर्माण करके उसे देश-विदेश के यात्रियो के आकर्षण का केन्द्र वना दिया ? कन्दरा की गोलाकार महराव को देखकर वड़े-से-वड़ा कारीगर भी आश्चर्यचकित रह जायगा। प्रकृति की इस महान कारीगरी के आगे मानव-कृति तो पानी ही भरेगी। कन्दरा का मुह चौड़ा है। थोड़ी छत है। तत्पश्चात पीछे पत्थर की ऊवड़-खावड़ दीवार-सी है। अंदर दाये कोने की दीवार मे एक वड़ा गोल-सा कोना

है। कहते हैं कि इसी स्थान पर नीचे से उठकर शिवलिंग निर्मित होता है। उसके सामने एक ओर को पार्वती और उनके निकट गणेश की हिम-मूर्तिया बनती है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हम लोग वहा एक मास देर से पहुंचे थे। इसलिए शिवलिंग के स्थान पर बर्फ की एक समतल चौकी-सी दिखाई दी। पार्वती और गणेश की मूर्ति के स्थान पर भी थोड़ी-सी बर्फ पडी थी। हम लोग मुग्ध, आदर-भाव से उस समूची कला-कृति को निरखते रहे। एक बगाली बहन बड़े ऊंचे स्वर में स्तुति-पाठ कर रही थी और उनके कण्ठ के माधुर्य और भक्ति-विह्वलता ने वहां के वायुमण्डल को बड़ा ही पुनीत बना दिया था।

हम लोगों ने जूते बाहर ही उतार दिये थे, लेकिन जमीन में ठंड इतनी अधिक थी कि पैर सुन्न होने लगे। तब मार्तण्डजी और भाभी को छोड़कर, हम सबने रस्सी के जूते पहन लिये, जिन्हे हम पहलगाम से साथ लाये थे। फिर भी ऐसा जान पडता था मानो पैर कट जायगे।

गुफा इतनी बड़ी है कि सैकडो व्यक्ति उसमे आसानी से ठहर सकते है। गुफा का ढाल ड्योढ़ी की ओर है और उसके ऊपर बहुत ऊचा पहाड है। काश्मीर सरकार ने यात्रियो की सुविधा के लिए थोडे-थोडे फासले पर लोहे की एक रेलिंग बनवा दी है, जिससे दर्शनार्थी अच्छी तरह, बिना भय के यहां ठहर कर दर्शन कर सके। गुफा के नीचे तथा दाए-बाए गर्मी मे काफी बर्फ रहती है, लेकिन कहते है कि गुफा के ऊपर पर्वत पर बर्फ देखने मे नही आती। छत मे से टपटप पानी गिरता रहता है और शायद उसीके कारण ये हिमाकृतियां बनती हैं। यहा के पहाड़ एकदम सूखे है। उन पर हरियाली का नाम तक नही है।

शिवपिंडी ही अमरनाथ महादेव कहलाती है और इसीकी पूजा के लिए दूर-दूर से यात्री आते है। हमें बताया गया कि आषाढ़ का चन्द्रमा ज्यो-ज्यों पूर्ण होता जाता है, शिवलिंग बढ़ता

जाता है और श्रावणी पूर्णिमा को वह पूरा वन कर तैयार हो जाता है। अनतर ज्यों-ज्यों चद्रमा की ज्योति क्षीण होती जाती है, शिवलिग भी घटता जाता है और अमावस्या के दिन वह वर्फ का समतल ढेर-मात्र रह जाता है। वस्तुत. संसार के महान आश्चर्यो मे से वह एक है, क्योंकि बरसो से यह क्रम चला आ रहा है और कोई भी पता नही चला सका कि यह कैसे और क्यों होता है।

हमने सुन रक्खा था कि यही गुफा मे कवूतरो की एक जोड़ी रहती है। दर्शन करने के वाद छत की ओर निगाह गई तो देखते क्या है कि एक छोटे-से हिस्से मे दो कवूतर वैठे है। जहां जीवजन्तु का नाम नही, वहा दो कवूतर क्यों और कैसे रहते है, वहुत सोचने पर भी यह वात समझ मे नही आई। जव वहा का रास्ता वंद हो जाता है, तब भी क्या ये कवूतर यही रहते है? उस समय खाते क्या होगे? जहा शीत इतनी है कि सवकुछ जम जाता है, इनकी रक्षा कैसे होती होगी? ये और ऐसे ही और वहुत-से प्रश्न मन मे उठे, लेकिन उनका उत्तर कौन देता! मानव-वुद्धि विलक्षण है और जहा कोई नही पहुच सकता, वहा वह पहुंच जाती है; लेकिन कुछ ऐसे भी अवसर आते है, जव यही मानव-वुद्धि चमत्कृत हो जाती है और उसकी गति जड़वत् हो जाती है।

गुफा मे सरनदास उदासीन नाम के एक साधु मिले। वह कम्वल का चोगा पहने थे और उनके सिर और दाढ़ी-मूछो के वाल वढे हुए थे। उनसे वातचीत होने लगी। उन्होंने वताया कि वह पंजाब से आये हैं और चार महीने से वही रहते है। मैंने पूछा कि आगे क्या विचार है? वोले, "मै पूरे साल यहां रहना चाहता हूं।"

"जाड़ों मे भी?"

"हां।"

"ठण्ड से कैसे वचेगे?" मैंने पूछा।

वोले, "मै चाहता हूं कि कही से पचास मन कोयले का प्रवंध

हो जाय तो मैं बड़े आनद से इस बार की सर्दी यही रह कर बिता सकता हू।"

मुझे विश्वास नही हुआ। जहा सितम्बर में ही इतनी सर्दी थी कि हाथ-पैर गले जाते थे, वहां जनवरी मे क्या हाल होगा ?

बाबा सरनदास ने स्तुति-श्लोक बोले। हम सबने पूजा की और नारियल चढ़ाये। परिक्रमा की। परिक्रमा करने लगे तो मेरा हृदय गद्गद् हो गया।

संत सरनदास से हम लोगों ने बहुत-सी बाते पूछी, लेकिन वे अधिक कुछ नही बता सके। इतना उन्होंने अवश्य बताया कि जब से वह यहां आये हैं, कबूतर बराबर बने है और शिवलिंग उन्होंने पूरा देखा है। पार्वती और गणेश की मूर्त्तियों के भी उन्होने बड़े भव्य रूप मे दर्शन किये थे, लेकिन वह यह नही बता सके कि सबसे पहले कब और किस व्यक्ति ने इस तीर्थ की खोज की थी। टट्टूवाले ने बताया कि कोई मलिक नाम का मुसलमान था, जो सबसे पहले यहां आया था। यही कारण है कि चढ़ावे का एक हिस्सा मुसलमानो को जाता है। मलिक कब आया, इसका पता नही। कोई तीस साल से वहा टट्टू आने लगे है। पहले पैदल और दुर्लभ अवसरो पर डाडी मे यात्रा होती थी। श्रावणी पूर्णिमा को प्रतिवर्ष यहां मेला लगता था, जिसमें हजारो नर-नारी आते है, वैसे तो आषाढ़ से लेकर क्वार तक यात्री आते रहते है। यात्रियो की सख्या हजारों तक पहुंच जाती है और टट्टू, डांडी तथा कुली भी हजारो की तादाद मे वहां जाते हैं।

टट्टूवालों ने यह भी बताया कि कबूतरों के अलावा इस हिस्से मे कभी-कभी कौवा भी दीख पड़ता है, जिसकी जबान और पंख लाल होते है, शेष शरीर काला। कही-कही बिल्ली से कुछ बड़ा ट्रिन नाम का एक जानवर भी मिलता है, जो करीब बीस फुट गहरी जगह बना कर रहता है और अधिक बर्फ के दिनो मे खाने के लिए घास जमा करके भीतर रख लेता है, पर हम लोगो

को तो उनमे से किसी के भी दर्शन नही हुए।

हम लोग गुफा पर कोई पौने दस पर पहुचे थे। घंटे भर रहे। दृश्य इतना भव्य, शात और मनोहारी था कि वहा से हटने की इच्छा नही होती थी, लेकिन टट्टू वाले जल्दी मचा रहे थे। वार-वार कहते थे कि धूप मे वर्फ पिघलना शुरू हो जायगा तो मुसीवत हो सकती है। इसलिए वर्फीले रास्ते को जल्दी-से-जल्दी पार कर ले तो अच्छा है।

वावा सरनदास हमे अपनी जगह पर ले गये, जो उन्होने उसी गुफा मे एक ओर को वना ली थी। उसमे उनकी आवश्यकता की थोडी-वहुत वस्तुएं सचित थी। उन्होने हमे प्रसाद के रूप मे भस्म दी, जो उन्होने नीचे नदी से लाकर वहा इकट्ठी कर रक्खी थी और कुछ किशमिश, मिश्री आदि का प्रसाद भी। आदमी मामूली जान पड़े। स्वस्थ भी अधिक नही थे। पता नही, वहा रह पायंगे या नही !

गुफा मे थोड़ी देर और चक्कर लगा कर हम लोगों ने उसके प्रत्येक भाग को भली प्रकार देखा। उसकी विशालता का अनुभव कर वार-वार आश्चर्य होता था।

स्थान इतना शांत और वायुमण्डल इतना सुखद है कि यात्री रास्ते के सारे कष्टो को भूल जाता है। दुनिया का कोलाहल वहां नहीं है, वहां की निस्तव्धता और जनाकीर्णता मे ऐसा कुछ है, जो आदमी के हृदय को सुख देता है और उसे उस कृतार्थता की अनुभूति कराता है, जो मनुष्य को अपने जीवन मे वहुत कम अनुभव होती है। अधविश्वासो मे मेरी आस्था नही है और न हजारों-लाखों व्यक्तियो की भाति मुझमे अध-श्रद्धा ही है, पर अनेक अवसरो पर अनुभव होता है कि जीवन मे श्रद्धा वहुत वड़ी चीज ह और मानव को जितनी शक्ति विवेक से मिलती है, उससे कही अधिक वल कभी-कभी श्रद्धा से प्राप्त होता है।

हम लोगो ने एक वार फिर उस सारी गुफा पर निगाह डाली, हिम-पुज को देखा, जय वोली और प्रणाम करके चल पड़े।

: १५ :

कैलास-दर्शन

गुफा से निकल कर वाहर आये और थोडी देर रुक कर गुफा को बाहर से देखने लगे। देखते-देखते हम लोगो की दृष्टि दूर, वहुत दूर, वाई ओर के एक पर्वत पर गई, जिसके ऊपर वर्फ-ही-वर्फ जमी थी और कई वादल के टुकड़े चक्कर लगा रहे थे। सूर्य की सुनहरी किरणो के मेल से वह दृश्य इतना सुन्दर लग रहा था कि हम लोगो की निगाह वरवस वहा टिक गई। हमे वताया गया कि वह कैलास है। भारत के महानतम तीर्थो मे कैलास की गिनती होती है और वहुत-कुछ प्रयत्न करने पर भी कम ही लोग वहा पहुच पाते है। उसके इतने भव्य रूप मे दर्शन करके हृदय को वड़ा आनद प्राप्त हुआ। हम लोग एक तीर्थ के दर्शन करने आये थे, दो के हो गये।

कैलास वहा से काफी दूर है और वहा जाने का रास्ता भी दूसरा है,लेकिन उसकी उचाई दूर से ही यात्रियो को उसके दर्शन का लाभ दे देती है। श्रीनगर से गुलमर्ग जाते हुए रास्ते मे वस से और फिर खिलनमर्ग पर पहुच कर नंगापर्वत की हिमाच्छादित माला के दूर से ऐसे ही दर्शन हुए थे। लगता था, मानो वह माला हमसे कुछ ही दूरी पर हो। कैलास को देखकर भी यह नही लगा कि वह हमसे दूर है।

पर्वतराज हिमालय भारत का ही नहीं, विश्व का एक गौरव है। स्थान-स्थान पर उन्होंने वडी उदारतापूर्वक अपने सौंदर्य का दान किया है। कही से भी हिमालय के दर्शन कर लीजिये, आपका हृदय आनद से गद्‌गद् हो जायगा। गगोत्री जाइए, यमुनोत्री जाइए, वदरीनाथ जाइए, मान-सरोवर जाइए, अमरनाथ जाइए, केदारनाथ जाइए, एवरेस्ट

जाइए, कैलास जाइए, गिरिराज की भव्यता आपके हृदय को विना मोहे नही रह सकती। उसके हृदय से जाने कितनी नदियां और प्रपात निकले है, उसकी गोद मे जाने कितने प्रकार के वृक्ष खडे है, उसके आंगन मे जाने कितने पशु-पक्षी स्वच्छन्द विचरण करते है, उसके हिममंडित शिखर जाने कितने यात्रियो को वहां खीच लाते है। हिमालय निस्संदेह सौदर्य, विस्मय और भव्यता का आगार है।

हम लोगों की दृष्टि कैलास पर से हटती नही थी। उसकी रमणीकता को देखकर मस्तिष्क किसी पुराने युग मे चला गया था, जव शंकर भगवान वहा तप करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी साधना के अनुरूप ही उन्होंने उस स्थान का चुनाव किया था।

अलमोड़ा की ओर से कैलास लगभग २५० मील पडता है, लेकिन कहते है कि कोई हिम्मत करके इधर से सीधा जाय तो वह केवल ८० मील है।

कैलास के दर्शन कर मन में अनेक प्रकार के विचार उठे। भगवान राम ने अयोध्या को, कृष्ण ने व्रज को, वुद्ध ने कपिलवस्तु को, महावीर ने कुण्डलपुर को और गाधीजी ने पोरवंदर को अमर वना दिया। भगवान शिव ने भी अपनी कठोर तपस्या से कैलास को भारत के लोकजीवन मे वह स्थान प्रदान किया जो युग-युगान्तर तक अक्षण्ण रहेगा।

अमरनाथ की गुफा कुछ ही गज के फासले पर थी, कैलास मीलो दूर था, लेकिन ऐसा लगता था, मानो दोनो एक-दूसरे के पार्श्व मे खडे हों। दोनो का सौदर्य अलौकिक था, दोनो के दर्शन से आखे तृप्त नही होती थी।

हम लोगो ने निश्चय किया था कि रात को वायुजन मे ठहरेगे। वहा पहुचने के लिए हमे सोलह मील का मार्ग पार करना था। अनिच्छापूर्वक हमने वारी-वारी से अमरनाथ और कैलास

से विदा ली, अमरनाथ महादेव की जटा मे से निकली अमरावती गंगा को प्रणाम किया, महिमामयी प्रकृति को सिर झुकाया और वहा की स्मृतियों की अमिट छाप हृदय पर लेकर वापस लौटे।

: १६ :

वापसी

अमरनाथ से चले तो हृदय इतना अभिभूत था कि वाणी मौन हो गई थी। टट्टुओ पर सवार होने के पूर्व हम लोगों ने खूब जोर से अमरनाथ का जयघोष किया था। उसके वाद वाचा मूक और दृष्टि आत्मस्थ हो गई। वोलने के लिए शब्द ढूढने पड़ते थे। लेकिन शीघ्र ही हम लोग सुस्थिर हो गये। अमरनाथ को जाते समय जिस सौंदर्य को पीठ-पीछे छोड़ गये थे, वह अव सामने था। अमरावती साथ-साथ चल रही थी। अमरनाथ की घाटी का नया रूप देखकर दिल वाग-वाग हो गया। जव हमारी टोली अपने-अपने टट्टुओं पर एक-एक करके वर्फ से गुजरी तो रोमाच हो आया। अमरनाथ जाते समय जव उसे पार किया था तो मन अमरनाथ पर केन्द्रित था, लेकिन अव वह वात नही थी और हम तटस्थ भाव से प्रत्येक दृश्य का आनद ले सकते थे।

अमरनाथ की घाटी पार करते ही दूर से पंचतरणी का मुकुटधारी पर्वत दीख पड़ने लगा। मार्तण्डजी वार-वार कहते थे, "चित्र ले लो।" मेरी भी इच्छा होती थी कि लू, लेकिन दुर्भाग्य से मेरा फिल्मों का स्टाक खत्म हो गया था और आखिरी वची फिल्म से अमरनाथ की घाटी का चित्र ले लिया था। मार्तण्डजी को इस वात का वडा खेद रहा कि हम लौटते मे इन दृश्यो के चित्र न ले सके। मुझे भी वड़ा मलाल रहा, लेकिन हो भी क्या सकता था।

अमरनाथ से हम लोग ११ बजे के लगभग चले थे। भैरौ घाटी पर आकर एक रोमांचकारी घटना हो गई। जिस प्रकार खतरनाक रास्ते पर टट्टूवालो ने जाते समय टट्टुओं पर से हमें उतार दिया था, उसी प्रकार आते समय भी किया, लेकिन भाभी जव उतर रही थी तो उनका पैर रकाव मे उलझ गया। पहले उलझा, फिर रकाव मे होकर दूसरी ओर निकल गया। अव वह एक पैर पर अपने भारी-से शरीर को साधने का प्रयत्न करने लगी और उस प्रयत्न मे उनका पैर और मुड़ने लगा। जगह वहां इतनी संकरी थी कि दो आदमी एक साथ मदद नही कर सकते थे। इधर उनका पैर उलझा था, उधर टट्टू आगे वढने को उतावला था। तभी टट्टू वाले ने आगे वढकर टट्टू को रोका और जल्दी से रकाब के बंधन को ढीला कर दिया। रकाव नीची हो गई और पर आसानी से निकल आया। यह आशंका हो गई कि कही पैर मे मोच न आ गई हो। रगड़ तो काफी आ गई थी, लेकिन चलने के उत्साह मे भाभी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया।

हम लोग पंचतरणी लौटे तो मध्यान्ह का सूर्य सिर पर आ चुका था। गुलाम नबी से हम लोग जाते समय कह गये थे कि वह चावल और साग तैयार करके रक्खे। पूर्णिमा होने के कारण भाभी का व्रत था। उन्हे भोजन करना नही था। पंचतरणी पहुंचते ही भोजन तैयार मिला। अन्नदा ने पिछली रात खाना नही खाया था। इसलिए भूख के मारे चिल्ला रही थी। हम सव लोगों ने झटपट भोजन किया। सामान सवेरे ही वाधकर गये थे। पिछली रात को जो टट्टू खो गये थे, वे दूर एक पहाड के पीछे जाकर मिल गये। रमजान का कहना था कि जिस आदमी से उन लोगो का झगड़ा हो गया था, शायद उसी ने उन लोगों को हैरान करने के लिए टट्टुओं को पहाड के पीछे ले जाकर और पैर वाधकर छोड दिया था। रजमान कहने लगा कि पहलगाम पहुंचकर इस आदमी की शिकायत पुलिस में करनी होगी। आप वहा इस मामले मे हमारी मदद करेंगे तो मेहरवानी होगी। हमने कहा कि इसमे

मेहरबानी की क्या बात है। हमसे जो हो सकेगी, वह मदद जरूर करेंगे।

टट्टू वालो ने तम्बू भी उखाड़कर बाघ लिये थे। जो थोड़ा बहुत सामान, बर्तन आदि खुले थे, वे समेटे और टट्टुओ पर लाद कर चलने की तैयारी की। अब तो मन मे यह था कि कब वायुजन पहुंचे और कब पहलगाम। इतनी भयंकर यात्रा की थकान तो होनी ही थी। मजिल तक जाने मे जोग रहता है, मंजिल पर पहुंचने के बाद थकान आती है।

पचतरणी से अष्टनमर्ग और हत्यारा तालाब होकर एक और मार्ग है, जो चदनवाडी पहुचाता है, लेकिन १९२८ की दुर्घटना के बाद उसे बंद कर दिया गया। दुस्साहसी लोग ही अब उस रास्ते आते-जाते है। भयकर होने के साथ-साथ वैसे वह बड़ा रमणीक बताया जाता हैं। जगह-जगह हरियाले मैदान आते है और कलकल-निनाद करते झरने मिलते है। इसलिए प्रकृति-प्रेमियो के लिए आज भी उस मार्ग का महत्व है। पंचतरणी से दो मील तक तो यही रास्ता रहता है। उसके बाद एक ओर को मुड़ जाता है। पाच मील चलने पर हत्यारा तालाब आता है। यहा १९२८ मे बहुत से यात्रियो की मृत्यु हो जाने के कारण इसका नाम 'हत्यारा तालाब' पड गया। वह एक विशाल झील के समान है। उसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे हिमाच्छादित पर्वत है। यहां से थोड़ी चढाई के पश्चात उतराई आती है। यह उतराई बडी कठिन बताई जाती है। कुछ आगे चलकर अष्टनमर्ग स्थान आता है। प्राकृतिक दृश्यों की दृष्टि से इस स्थान का अपना महत्त्व है। अष्टनमर्ग से चदनवाड़ी कुल सात मील है। हम लोगो ने नये रास्ते का खतरा उठाना पसद नही किया और परिचित मार्ग से ही लौटे।

महागुनस पहुचकर हम लोगों ने टट्टू थोड़ी देर विश्राम करने के लिए छोड दिये। एक जगह बैठकर विनोद कर रहे थे कि इतने मे विष्णुजी की टोली भी आ गई। सब साथ हो गये।

विष्णुजी वहुत प्रसन्न थे। ललितावहन तो पहले ही से प्रफुल्लित थी। उनकी टोली के शेष सदस्य भी खुश थे और खूब चहक रहे थे। उन्होंने बताया कि अमरावती गगा मे स्नान करके तव उन्होने दर्शन किये थे। मैने कहा, "आपने तो हम सबसे ज्यादा लाभ लिया।"

इधर से हम लोगों ने यह घाटी मेह मे पार की थी और कैसी मुसीवत हुई थी, यह पाठक पढ़ ही चुके है। अव मौसम एकदम साफ था। मुझे मजाक सूझा। मैंने चिल्लाना शुरू किया, "जयशभो, जय शभो!" सव लोग जोरो से हंस पड़े। सारा वायुमण्डल हँसी से गूज उठा। इसी प्रकार विनोद करते और हँसते-हँसाते हम शाम को पाच वजे के लगभग वायुजन पहुचे। वहा के रेस्ट हाऊस को पहले से ही रिजर्व करा लिया था, लेकिन वहा पहुचकर देखते क्या है कि दो-तीन परिवारो ने उसके अधिकाश भाग पर कब्जा कर लिया है। एक छोटा-सा कमरा खाली वचा था। विष्णुजी और ललितावहन ने आग्रह किया कि हम सव लोग साथ-साथ ही ठहरे। फर्श पर नीचे विस्तर कर लेगे। आखिर एक रात की ही तो वात है, लेकिन हम लोगो को वह ठीक न लगा। इसमे उन लोगों को वडा कष्ट होता, क्योकि हम आठ जने थे और वे भी १०-११ जने थे। छोटे-से कमरे मे गिच-पिच रहने की अपेक्षा खुले मे रहने के खयाल से हम लोग दूसरी ओर वने वैरकनुमा मकानो मे चले आये। वे थे तो वडे गंदे। आखिर एक को पसद किया और टट्टूवालों की मदद से उसे साफ कराया। फिर चटाइया विछाकर विस्तर लगाये। सवसे पहले चाय का प्रवध किया गया। उसके वाद भोजन का डोल जमा। सरदी तेज थी। पहले वता ही चुके है कि यहां हवा के कारण सर्दी कुछ अधिक होती है। अन्नदा जाड़े के मारे कांपने लगी। उसके लिए कागड़ी मे आग जलाकर दी और वाद मे कांगड़ी को उसकी रजाई के भीतर रख कर विस्तर गरम किया। भोजन वना, लेकिन खाया कुछ नहीं गया। १६ मील का थका देने वाला

सफर था। कुछ लोगों को उंचाई की वजह से सास की तकलीफ फिर हो गई थी। भोजन से निवट कर सोने की तैयारी की।

इधर से जाते हुए घने कोहरे के कारण वहां की उस पर्वत-शृंखला के अच्छी तरह से दर्शन नही कर पाये थे, जिसकी तीन चोटियां व्रह्मा, विष्णु और महेश के नाम से प्रसिद्ध है। अव लौटते समय सांझ हो चुकी थी। फिर भी वर्फ से ढकी उन तीनों चोटियों की धुंधली झांकी से ही मन उछल पडा। रात को ठीक से नीद नहीं आई। इस वार आदर्श को सास लेने मे ज्यादा कष्ट हुआ। रात मे दो-तीन वार वह वाहर खुली हवा में सांस लेने गई। विट्ठलजी ने ठंड से वचाव का वढ़िया उपाय निकाला। रवड़ की थैली में गरम पानी भरकर विस्तर मे रखकर सो गये।

सवेरे उठे तो शेषनाग-झील पर उगते सूर्य का प्रतिविम्व वड़ा सुहावना लग रहा था और व्रह्मा, विष्णु, महेश की चोटियां साफ दीख पड रही थी। सव लोग निवृत्त हुए। चाय-नाश्ते की तैयारी शुरू हुई। रात को टट्टूवालों ने वताया कि अमरनाथ से लौटते हुए रास्ते मे एक वहन टट्टू से गिर गईं। उनकी वांह टूट गई है। सवेरे उन्हे देखने गये। उनके साथ और भी कई लोग थे। वहन डाडी मे वैठी थी और उनके चेहरे पर वड़ी वेदना थी। संयोग की वात देखिये कि दार्जिलिंग के वंगाली डाक्टर यहा भी मौजूद थे और रात को ही आकर उन्होंने उन वहन को यथा-संभव प्राथमिक चिकित्सा एवं सहायता दे दी थी। सवेरे जव हम उन वहन के पास गये तो सामने उन्ही डाक्टर को देखकर मेरा जी भर आया। सेवा के अवसर पर यह कैसे हो सकता था कि वह चूक जाते !

८ वजे तक हम लोग नाश्ता करके तैयार हो गये और आगे को चल दिये। सुवह का समय था। इसलिए कुछ दूर तक पैदल चले, फिर टट्टुओ पर सवार हो गये।

शेषनाग की झील वही थी, उसके चारों ओर हिमाच्छादित पर्वत वही थे, शेषनाग नदी उसी गति से वह रही थी, लेकिन अब उनका सौदर्य उतना आकर्षक प्रतीत नही होता था, जितना जाते समय लगा था। अमरनाथ के अद्‌भुत दृश्य आंखो मे वसे थे न ! वर्फ पर चल चुके थे, तब दूर की बर्फ को देखकर अव क्या रोमांच होता ?

आगे कुट्‌टाघाटी आई। वहा वंगाली डाक्टर की टोली टट्‌टुओं से उतर गई थी और घाटी को पैदल पार कर रही थी, पर हम लोग टट्‌टुओं से नही उतरे। आगे चलकर एक दृश्य सचमुच ऐसा आया कि उसे देखकर रोमांच हो गया, सारा शरीर भय से कांप उठा। मालक अपने टट्‌टू पर वैठे चुपचाप घाटी में उतर रहे थे। अचानक एक मोड़ आया और उनका टट्‌टू एकदम रास्ते के विल्कुल किनारे रुक कर खडा हो गया। यदि दो इंच उसका पैर इधर हो जाय तो धड़ाम से नीचे शेपनाग नदी में। मालक का चेहरा फक। पीछे से आया सपाटे से मार्तण्डजी का उत्पाती टट्‌टू। मालक जानते थे कि वह मुह मारने की अपनी आदत से बाज नही आता है। वह मूर्त्तिवत् वैठे-वैठे ही चिल्लाये, "मार्तण्डजी, अपने टट्‌टू को संभालना।" मार्तण्डजी ने पहले ही उस नाजुक स्थिति को देख लिया था और सावधान थे। उनका टट्‌टू भागता हुआ आया और मालक के टट्‌टू के पास से निकल गया। भगवान की दया से उसने अपना मुह नहीं चलाया। जरा देर बाद मालक का टट्‌टू स्वयं ही आगे वढ़ गया। मालक ने और हम लोगों ने चैन की सांस ली। मैंने चिल्लाकर पूछा, "मालक, हाऊ आर यू ?" जवाव मिला, "क्वाइट वैल।"

जोजपाल पर आये तो रात के वर्षा और ओलो की याद करके शरीर एकवारगी सिहर उठा। कैसी वीती थी उस रात को ! लेकिन वह घटना अव कष्ट नही, मनोरंजन का विषय वन गई थी।

इतनी दूर वाद यहां फिर हरियाली देखने को मिली। परिवर्तन हुआ। आगे पिस्सूघाटी तक वरावर भोजपत्र का जंगल था। शेषनाग के किनारे के हरे-भरे दृश्य वड़े सुहावने लगे। अव दाईं ओर के पर्वत सूखे थे, वांई ओर हरियाली-ही-हरियाली थी।

आगे चौपानो का मुकाम आया। भेड़ें आज भी वहुत वड़ी संख्या में थी और उनमें से अधिकांश निश्चेष्ट-सी एक-दूसरे पर गर्दन टिकाये वैठी थी। कुछ भेड़े इधर-उधर मटर-गश्ती भी कर रही थी। उनके वीच वड़े वालो वाला एक वकरा शान से खड़ा था। उस रेवड के एक ओर होकर हम लोग आगे वढ़ गये।

अमरनाथ से अवतक का मौसम वहुत अच्छा था, लेकिन अव कुछ-कुछ वादल होने लगे थे। हम लोग वार-वार यही मनाते थे कि कैसे ही जल्दी-से-जल्दी पहलगाम पहुच जाय।

पिस्सूघाटी पर आकर टट्टुओं से उतर पड़े और सव लोगो ने निश्चय किया कि घाटी को पैदल पार करेंगे। गुलाम नवी ने वताया कि इस घाटी मे भोजपत्र वड़ा अच्छा मिलता है। हमने कुछ भोजपत्र इकट्ठा करना चाहा तो रमजान ने कहा कि आप लोग आगे जाइए, आपके लिए कुछ भोजपत्र गुलाम नवी ले आवेगा।

आगे निकल जाने की इच्छा से सुवीर रास्ता छोड़कर नया रास्ता वनाकर चलता था। इस क्रिया मे कभी-कभी उसे थोड़ा उंचाई से कूदना भी पड़ता था। इसमे डर था कि कही उसका पैर न फिसल जाय। हम लोग उसे रोकते थे, मगर वह उत्साह मे किसकी सुनता था!

पिस्सूघाटी पार करते समय अचानक एक दम्पति मिल गये। युवा थे। टट्टू पर उनका पांच-छः वर्ष का वच्चा मजे मे वैठा आ रहा था। वे दोनो पैदल ही चल रहे थे। हम लोग वातें करने लगे।

उन बहन ने पूछा, "आप पहली बार आये है ?"

"जी हां। और आप ?"

"मै पहले मेले पर आई थी। अब दूसरी वार आई हूं।"

"बच्चा दोनों बार साथ रहा ?"

"जी हां।"

"इसे डर नहीं लगता ?"

"नहीं, यह तो यात्रा में बड़ा खुश रहता है।"

"आपको मेले के समय अच्छा लगा था या अब ?"

सुनकर बहन मुस्कराई। बोलीं, "मेले पर भीड़ बहुत थी। पर देखने का इस समय अधिक अच्छा मौका मिला।"

मैंने कुछ आश्चर्य से पूछा, "इतनी कठिन यात्रा आपने दो बार कैसे कर डाली ?"

वोली, "मौका आवे तो तीसरी वार फिर कर सकती हूं।"

मैने मन-ही-मन उन वहन के प्रकृति-प्रेम तथा धर्म-परायणता को शाबासी दी और वच्चे के साहस को सराहा। हम तो सुधीर के साहस से ही मन मे फूल रहे थे, पर उससे तीन साल छोटे इस बालक का साहस तो और भी बढ़कर निकला।

घाटी मे छोटे-छोटे कई प्रकार के फूल खिले थे। सुधीर ने वहुत से तोड़कर हाथ मे ले लिये। वड़े अच्छे लगते थे।

बातचीत में घाटी पार हो गई। रास्ता मालूम भी न पड़ा। इधर से जव गये थे तो यही घाटी वड़ी भयंकर लगी थी और उसकी ऊवड़-खावड़ता से टट्टुओं के गिर जाने की आशंका मन में रही थी। राम-राम करके चढ़े थे। आते समय मजे में उतर आये।

पिस्सूघाटी के वाद नदी के किनारे एक भोजपत्र का पेड़ मिला। हम लोगों ने उस पर चढ़कर अपने नुकीले डंडो से वहुत-सा भोजपत्र छुड़ाया और साथ में ले लिया।

अव हम लोग फिर टट्टुओं पर सवार होकर आगे वढ़े।

वही वर्फ का पुल आया, लेकिन उस ओर अव विशेष ध्यान न था। ठीक बारह वजे चंदनवाड़ी पहुचे। पिछली वार की भांति आज भी यहां काफी भीड़भाड़ थी। मर्द-औरतें कही घास पर वैठे वातें कर रहे थे तो कही ताश खेल रहे थे। वच्चे किलकारियां मार रहे थे।

वायुजन से जव हम रवाना होने को थे तो हमें दो दुवले-पतले युवक मिले थे। उनके पास पहनने के कपड़ों के अलावा ओढ़ने-विछाने को कुछ भी नही था। वे पैदल पहलगाम से चदन-वाड़ी घूमने आये थे। उनमे से एक वहुत उत्साही था। उसने दूसरे को प्रोत्साहित किया तो दोनों आगे वढ़कर वायुजन पहुंच गये। वहा सर्दी के मारे दोनों का वुरा हाल हो गया। पहनने के भी पूरे कपड़े उनके पास न थे। आखिर दो और यात्रियों ने उन पर रहम खाया और उन्हे रात को ओढ़ने के लिए कुछ कपड़े दे दिये। उनमे से एक की सांस फूल रही थी और वह वार-वार वापस होने का आग्रह करता था। दूसरे का मन अमरनाथ जाने को था। हम लोगो को मालूम हुआ तो उनसे मिले। विट्ठलजी ने कहा, "आप लोग अच्छी तरह से अमरनाथ जाओ। जो चाहिए वे कपड़े हम से ले लो। हम तुम्हे दो लोइयां दिये देते है। इन्हे पहलगाम के गाधी आश्रम मे लौटा देना।"

पर वे न माने। उनमें से एक कहता था, "मै आगे हर्गिज नही जाऊंगा। मेरी तो तवीयत खराव हो रही है।"

दूसरा कहता था, "थोड़ी हिम्मत करके चले चलो। कौन यहां वार-वार आता है।"

आखिर मे न जाने वाले की चली और वे दोनो वापस लौट आये।

पंचतरणी मे सरदारजी के होटल के पास ही एक मदरासी महिला वैठी थी। उनका सारा मुह छिला हुआ था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह रास्ते पर खड़ी थी। एक लद्दू टट्टू आया

और उनसे टकरा गया। वह तो अच्छा हुआ कि रास्ते पर ही गिर कर रुक गईं। कही जरा आगे को गिरी होतीं तो पाताल मे पहुंचती।

ऊपर की सर्द हवा के कारण हम लोगों की नाक की चमड़ी गई फट थी और कुछ की माथे की। सारा चेहरा स्याह पड़ गया था। शक्ल-सूरत से हम लोग विल्कुल दूसरे ही आदमी वन कर लौटे थे। घर के ही लोग मिल जाते तो देखकर हँसते।

चंदनवाड़ी में थोड़ी देर रुककर सरदारजी के होटल मे भोजन किया। रोटियां, दाल, साग, सब ठीक थे, पर न जाने क्यों भोजन मे वह स्वाद नही आया, जो अमरनाथ जाते समय आया था। खा-पीकर, पहलगाम पहुंचने की इच्छा से, तत्काल रवाना हो गये।

चंदनवाड़ी से पहलगाम आठ मील था। ज्यो-ज्यो हम लोग निकट आते गये, रास्ता भारी पड़ता गया। फिर भी कुछ दृश्य देखकर मन को वड़ी प्रसन्नता हुई।

५।। वजे के लगभग हम लोग पहलगाम पहुंचे। सीधे गाधी आश्रम गये। श्यामलालभाई से मालूम हुआ कि उन्होंने हमारे लिए नदी-किनारे तम्वू तनवा दिया ह। टट्टुओ पर ही हम लोग अपने तम्वू पर गये। टट्टुओं से उतरे, उन्हे खूव प्यार किया। टट्टुओ के साथ टोली का एक चित्र खीचा और टट्टूवालों से हाथ मिलाकर और रमजान तथा गुलामनवी को छाती से लगा कर विदा दी। चार दिन की इस कठिन और सदा याद रखने वाली यात्रा मे ये टट्टू और टट्टू वाले हमारे परिवार के एक अंग-से वन गये थे। उनसे अलग होते समय मन को वड़ा दुःख हुआ।

इस प्रकार १० सितम्वर को प्रारंभ हुई यात्रा १३ की शाम को पूर्ण हुई। साढ़े तीन दिन मे कुल मिलाकर ५६ मील हम लोगो ने टट्टुओं पर सवारी की। जीवन का वह अद्भुत अनुभव था।

: १७ :

अमरनाथ का धार्मिक महत्व

हमारा देश धर्म-परायण देश है। यहां की मिट्टी का कण-कण धार्मिक दृष्टि से पावन माना जाता है। भारत के छत्तीस करोड़ निवासी विभिन्न रूपों मे अपने विश्वासों और धर्मो के अनुसार विभिन्न देवी-देवताओं तथा ईश्वर की पूजा करते है। धर्म यहां के लोकजीवन का सम्वल है। अमरनाथ के दर्शन के लिए सहस्रों वड़े-वूढ़े, कमजोर स्त्री-पुरुषो तक को खींच ले जाने वाली प्रेरक शक्ति भी उनकी धार्मिकता है। सैकड़ो-हजारो मील से लोग अनेक प्रकार की असुविधाओं और परेशानियों का सामना करके वहां पहुंचते हैं और अमरनाथ की धर्म-कथा को सुनकर गद्गद् हो जाते है। जवतक भारत का लोकजीवन सुरक्षित है, धर्म के प्रति यह निष्ठा वरावर वनी रहेगी।

यहां अमरनाथ की पौराणिक कहानी देना अप्रासंगिक न होगा। यह कहानी वडी रोचक है। इसमें न केवल शिव की महिमा वताई गई है, अपितु यात्रा किस प्रकार करनी चाहिए, रास्ते में कौन-कौन से पूजनीय स्थान पड़ते है, कथा सुनने का फल क्या है, आदि-आदि अनेक वातें वताई गई है।

कहते है, एक वार नारद मुनि कैलास पर्वत पर महादेव के पास गये। महादेव उस समय वन-विहार करने गये थे। पार्वती थी। उन्होंने नारद को प्रणाम करके आदरपूर्वक आसन पर विठाया और आने का कारण पूछा। नारद ने कहा, "हे पार्वती, मेरे मन मे एक प्रश्न उठा है, जिसका उत्तर मैं आपसे चाहता हूं। कृपा कर यह वतावे कि महादेव सव देवों से वडे है। उनके गले मे रुण्डमाला क्यो है?"

पार्वती इसका उत्तर न दे सकी तो नारद ने कहा, "महादेव से पूछिये।" इतना कहकर नारद अंतर्धान हो गये।

जब महादेव आये तो पार्वती ने नारद का प्रश्न पूछा। महादेव ने कहा, "यह प्रश्न मत पूछो।" लेकिन जब पार्वती का आग्रह हुआ तो उन्होंने बताया कि मेरे गले में जितने मुण्ड हैं, वे सब तुम्हारे ही सिर हैं। तुमने जितने शरीर धारण किये हैं उतने ही मुण्ड हमने धारण किये हैं।

इसपर पार्वती ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "इसका मतलब यह हुआ कि मैं मरती हू और आप अमर है ?"

महादेव ने कहा, "तुम ठीक कहती हो। मैं अमर हूं और ऐसा अमरनाथ के कारण हुआ है।"

पार्वती ने कहा, "तो वह कथा मुझे भी सुना दीजिये।"

महादेव ने इस गुफा मे आसन लगाया और कालाग्नि रुद्र नामक एक गण को बुलाकर चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कराई, जिससे पार्वती के अतिरिक्त और कोई भी उस कथा को न सुन पावे। दैवयोग से महादेव के आसन के नीचे एक तोते का अण्डा था, जिस पर गण की दृष्टि नही गई। महादेव एकाग्र-चित से अमरकथा सुनाने लगे और पार्वती सुनने लगी। कथा सुनते ही अंडे मे जीवन पैदा हो गया। उधर पार्वती कथा सुनते-सुनते सो गई तो अंडे मे से तोता उनके स्थान पर हुकारा देता रहा। अमरकथा समाप्त होने पर महादेव ने पूछा, "तुमने कथा सुनी ?" पार्वती ने उत्तर दिया, "नही, मै तो सो गई थी।" तब महादेव ने विस्मय से चारों ओर देखा कि यह हुंकारा कौन दे रहा था। तोता यह देखकर घबड़ा कर उड़ा। महादेव ने पीछा किया। तोते को त्रिलोक में कहो भी स्थान नहीं मिला। भगवान व्यास की स्त्री अपने द्वार पर बैठी थी। उन्होने जमुहाई लेने के लिए मुंह खोला तो तोता उनके मुंह मे होकर पेट मे चला गया। महादेव ने व्यास से कहा कि हमारा चोर आपके यहां है। व्यास को कुछ पता न था। उन्होंने स्त्री से पूछा तो उसने बता दिया कि कोई पक्षी पेट मे चला गया है। स्त्री को मारना पाप होता है। महादेव लौट आये।

कुछ समय बाद जब व्यास की स्त्री के पेट में बहुत पीड़ा होने लगी तो व्यास ब्रह्मा के पास गये और उन्हे साथ लेकर विष्णुजी के पास आये। अनंतर तीनों मिलकर महादेव के पास पहुंचे। चारों ने पक्षी की स्तुति की। अमरकथा के प्रभाव से वह पक्षी चारो वेद, अठारह पुराण आदि-आदि से पूर्ण ज्ञानी हो गया था। चारो की स्तुति सुन कर वह बोला, "जबतक यह जगत निर्मोही न होगा तबतक मैं बाहर नही आऊंगा।" विष्णु ने अपनी माया से जगत को निर्मोही बना दिया। पक्षी बालक के रूप मे बाहर आया। उसका नाम शुकदेव हुआ।

उसी समय विष्णु ने अपनी माया समेट ली। जगत फिर मोही बन गया। व्यास व्याकुल होकर अपने पुत्र के पीछे दौड़े। शुकदेव ने कहा, "इस दुनिया मे न कोई किसी का पुत्र है, न पिता।" व्यास ने कहा, "अब ऐसा नही है।"

शुकदेव ने ध्यान लगाकर देखा तो पता चला कि विष्णु ने उनके साथ छल किया है। उन्होंने दुखी होकर कहा, "मै जबतक गुरु नही कर लूंगा, घर नही लौटूंगा।"

शुकदेव सब जगह घूमे, पर कोई भी उनसे बड़ा न मिला। तब पिता के सुझाव पर वह राजा जनक के पास गये। राजा जनक के पास उनकी स्त्री और उनके राजपाट को देखकर उन्हे ग्लानि हुई; लेकिन राजा जनक की माया से उसी समय सारा नगर अग्नि मे भस्म हो गया। महल भी भस्म होने लगा। इतने पर भी राजा जनक और उनकी स्त्री का मन विचलित न हुआ। शुकदेव का चित व्याकुल होने लगा। उन्हे अमरकथा के सुनने और अमर होने का अभिमान था। राजा जनक ने कहा, "हमारा शरीर नश्वर है, जलेगा। पर तुम क्यो घबराते हो? तुम तो अमर हो।"

शुकदेव और भी व्याकुल हुए। राजा जनक ने उनकी व्यथा को देखकर अग्नि-शांत कर दी। शुकदेव ने उन्हें अपना गुरु बनाकर उपदेश ग्रहण किया।

इसके पश्चात शुकदेव मुनि नैमिषारण्य गये। वहां उनका बड़ा आदर हुआ। ऋषि-मुनियों ने एकत्र होकर उनसे अमर कथा सुनाने की प्रार्थना की। शुकदेव ने उनकी प्रार्थना मानकर कथा कहना आरंभ किया। ज्योंही कथारंभ हुआ कि कैलास, क्षीर-सागर और ब्रह्मलोक हिलने लगे। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव दौड़े आये। महादेव को भय हुआ कि सारे लोग अमरकथा सुन लेंगे तो सृष्टि का संचालन रुक जायगा। इसलिए क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दिया कि जो अमरकथा को सुनेगा, वह अमर नही होगा, लेकिन शिवलोक को अवश्य प्राप्त होगा।

× × ×

पार्वती ने महादेव से कहा, "हे स्वामिन, मैं अमरनाथ-यात्रा का महत्व सुनना चाहती हूं। कृपाकर आप उसकी महिमा का वर्णन करें, यात्रा का मार्ग बतावें और यह भी कहें कि अमरनाथ का दर्शन करने वाला किस गति को प्राप्त होता है।"

महादेव ने उत्तर दिया—हे देवि, यात्रा दो प्रकार की होती है। एक ऊपर की, दूसरी नीचे की। ऊपर की यात्रा मोक्ष चाहने वाले योगियो को प्राणायाम से होती है। नीचे की यात्रा पादाचार से। ये दोनों प्रकार की यात्राएं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के अभिलाषी पुरुषों को करनी चाहिए। इनसे पाप क्षय होकर चित्त शुद्ध होता है और व्यक्ति अमरकथा के सुनने का अधिकारी हो जाता है। यात्रा इस कथन के अनुसार शुरू हो। श्रीनगर में गणेश की स्तुति कर षोडश (गुराहुयार) तीर्थ पर स्नान तथा आचमन करके शिवपुर (पामपुर) पहुचे, फिर सिद्धों के क्षेत्र पद्मपुर मे और वारीश (वारसु) मे रुद्रगानायक तीर्थ पर स्नान करके युवती, मिष्ठोदं (मिठवन्य) तीर्थों मे होकर अवन्तीपुर जाय। वहां सिद्धों के क्षेत्र में स्नान कर महानाग जाकर हारीपारी गांव मे हरिद्राख्य गणपति में होता हुआ वलिहार क्षेत्र पहुंचे। वहां से हस्तिकर्ण (नागाश्रम) के समीप ज्येष्ठापाढ़ नामक

गणस्वामी का पूजन करे। फिर चक्रनामक तीर्थ होता हुआ देवक तीर्थ (देवकायर) जाय। वहां से हरिश्चन्द्र तीर्थ के दर्शन कर लम्बोदरी नदी में स्नान कर और थुजवारा ग्राम में महादेव की गुफा को देखता हुआ सूर्य क्षेत्र (मटन) के सूर्य-कुण्ड में स्नान कर (सूर्य मंदिर में) सूर्य भगवान के दर्शन करे। सूर्य-क्षेत्र अपने कर्मो से दुखी हुए पितरों के उद्धार के लिए उत्तम है।

इसके अनंतर सत्कार (सोकरस), भद्राश्रम, हयशीर्ष (सिलगाम), अश्वतरक्षेत्र, सरलक (सलर) होता हुआ वालखिल्य आश्रम (ख्यिलन) जाय। कहते है कि इस अंतिम तीर्थ में वालखिल्यनामक ऋषियो ने कठोर तप किया था। उसने प्रसन्न होकर विष्णु भगवान से वर मांगने को कहा। उनकी विनय पर विष्णु भगवान ने वहा गंगा को प्रकट किया और यह वरदान भी दिया कि प्रलय तक वालखिल्य तीर्थ पवित्र रहेगा।

इसके वाद मामेश्वर (मानसेश्वर) जाय। कहते है, एक समय महादेव गणेश को दोनों ड्योढियों पर द्वारपाल वनाकर स्थलवाट चले गये। वहां थोड़ी देर ठहरकर खिल्यायन से ऊपर दंडक मुनि के आश्रम मे जाकर विश्राम करने लगे। वहां देवता आये तो महादेव ने कहा—आगे मत वढो। ये शब्द सुनकर गणेश पाताल से आये और उन्होंने भी यही शब्द कहे। उन्हे सुनते ही देव महादेव में विलीन हो गये। अतः यह ग्राम मामल नाम से प्रसिद्ध हुआ। महादेव ने गणेश से कहा अब तुम बहुत दिनों तक यही रहो और विघ्न-वाधाओ को दूर करो।

फिर मामलेश्वर के पास लम्वोदरी नदी मे स्नान करे। एक वार कैलास पर्वत पर महादेव पार्वती को कुछ वातें वता रहे थे। किसी को न आने देने के लिए गणेश को द्वारपाल वनाकर खड़ा कर दिया था। इतने में इन्द्र त्रिपुरासुर से दु.खी होकर देवताओं के साथ आये। गणेश ने रोका। दोनो मे युद्ध हुआ। इंद्र हार गये। क्रोध करने से गणपति को भूख-प्यास लग आई। उन्होने

खूब फल खाये और गंगाजल पिया। उनका पेट निकल आया तो महादेव उन्हें लम्वोदर कहने लगे। गंगा सूख गई थी। महादेव ने डमरू से गणेश के पेट पर चोट की तो वह उनके उदर से निकलकर वहने लगी। तव से उसका नाम लम्वोदरी पड़ गया।

लम्वोदरी के वाद रंजिवन जाय। यहां राम, लक्ष्मण और सीता आये थे और मदमत्त राक्षसों को देखकर उन्हे पसीना आ गया था। उनके पसीने की वूदें कुण्डों में गिरने के कारण वे पवित्र हो गये। पत्थरों पर चढ़ कर राम ने दैत्यों का अपने वाणों से संहार किया। राक्षरों का रक्त गिरने से वह पहाड़ रंग गया। राम के चरण-स्पर्श से पवित्र वना।

अनंतर नील नंगा मे स्नान कर स्थाणुआश्रम (चंदनवाड़ी) की ओर प्रस्थान करे। एक बार महादेवजी का मुह खेल में पार्वती के नेत्रों से लग गया, जिससे उनकी आंखों के अंजन का निशान मुह पर हो गया। महादेव ने उसे गंगा मे धोया। उसके कारण गंगा का जल नीलवर्ण हो गया और वह 'नील-गंगा' कहलाई। यह नीलगंगा पहलगाम से ६॥ मील चंदनवाड़ी के रास्ते में है। किसी समय मे कैलासवासी शिव दक्ष प्रजापति की पुत्री सती के वियोग मे हिमालय पर कठोर तपस्या करने लगे। महेश्वरी वहुत दिनों तक उनकी सेवा करती रहीं, लेकिन महादेव अपनी तपस्या में लीन रहे। पार्वती चन्दन वाटिका मे थी। वहुत घवराई। शिव चूकि वहां निश्चल रूप से विराजमान थे, इसलिए वह स्थान स्थाणु-आश्रम कहलाया।

इसके वाद सरस्वती नदी आती है, फिर पेपण पर्वत (पिस्सू-घाटी)। एक समय देवता और असुर महादेवका दर्शन करने आये। पहाड़ पर चढ़ते समय उनमे होड़ लग गई कि देखे कौन पहले पहुंचता है। युद्ध होने लगा। असुर पराजित हुए। उन्ही की हड्डियों का ढेर पेषण पर्वत (पिस्सूघाटी) है।

पिस्सूघाटी के ऊपर शेषनाग (सिसिर नाग) तथा वायु-

वर्जन (वायुजन)जाय।(इसकी कथा अध्याय १० मे आ चुकी है।)

जब शेषनाग पर्वत पर इन्द्र ने राक्षसों को हैरान किया तो वे भाग कर हत्यारा तालाब मे छिप गये और देवताओं को त्रास देने लगे। एक बार महादेव और पार्वती वहां से गुजरे तो पार्वती ने देवताओं का कष्ट दूर करने को कहा। महादेव के शाप से तालाब सूख गया।

इसके पश्चात् पंचतरंगिणी (पंचतरणी) के पांच प्रवाहों में स्नान करे। पूर्वकाल मे एक बार शंभु यहां ताण्डव कर रहे थे। उनके जटाजूट ढीले हो गये और उनमे से पंचधारा वाली गंगा (पचतरणी) प्रकट हो गई।

श्रावणी के दिन प्रात.काल भैरो घाटी की यात्रा करते हुए उसकी चोटी डामरक पर पहुंचे और डामेश्वर भैरव का दर्शन करे।

हे, पार्वती इसके बाद अमरावती नदी मे स्नान कर अमरनाथ का दर्शन करे।

यह कथा सुन कर पार्वती बोली, "हे स्वामी, अब मुझे यह बताइये कि महादेव गुफा मे स्थित होकर अमरेश कैसे कहलाये?"

महादेव ने कहा—जिस प्रकार सृष्टि की रचना हुई, उसी प्रकार देवताओ आदि की। दूसरों की भाति वे भी मृत्यु को प्राप्त होते थे। इसलिए वे महादेव के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि उन्हे मृत्यु से छुटकारा दिलवा दे। महादेव ने उन्हे सात्वना देकर कहा कि मै आपकी मृत्यु के भय से रक्षा करूंगा। महादेव ने इतना कहकर अपने सिर से चंद्रमा की कला को उतार कर निचोड़ा और देवताओ से कहा कि यह आपके मृत्यु रोग की उत्तम औषधि है। हे पार्वती, चन्द्रकला के निचोड़ने से जो अमृत-धारा निकली वह अमरावती नदी है। जो अमृतबिन्दु महादेव के शरीर पर पड़े वे धरती पर गिर कर सूख गये। वे भस्म के रूप मे गुफा में है। वह रस कड़ा होकर लिंग रूप हो गया। उनके दर्शन से देवताओ

का मृत्यु-भय दूर हो गया। अव से मेरा अनादि लिंग-शरीर त्रिलोक में अमरेश के नाम से प्रसिद्ध होगा। देवता लोग अमरेश्वर भगवान के लिंग के दर्शन कर चले गये।

पार्वती ने पूछा, "हे देव, यह और वताइये कि कौन से शिवगण कवूतर हुए, क्यों हुए और कहां रहते हैं ?"

महादेव ने कहा—एक वार महादेव संध्या समय नृत्य कर रहे थे। उसी समय रुद्र-रूपी गण आपस मे ईर्ष्या से 'कुरु-कुरु' करने लगे। महादेव ने देखा तो उन्हें वड़ा क्रोध आया। उन्होंने शाप दिया कि वे रुद्ररूपीगण दीर्घकाल तक कुरु-कुरु करते रहेंगे।

पार्वती ने पूछा, "अव कृपाकर इतना और वताइये कि यात्रा किस समय सवसे अधिक फलदायक होती है ?"

महादेव ने उत्तर दिया—हे पार्वती, यात्रा का सवसे अधिक पुण्य श्रावणी को मिलता है, क्योकि महादेव ने अपना स्वरूप रक्षा-पूर्णिमा को प्रकाशमान किया था। हे देवी, काशी मे लिंग-दर्शन व पूजन से दस गुना, प्रयाग से सौ गुना और नैमिपारण्य तथा कुरु से हजार गुना अधिक पुण्य देने वाला अमरनाथ का दर्शन और पूजन है।

: १८ :

देश-विदेश की दृष्टि में

अमरनाथ का आकर्पण चिरकाल से रहा है और अनेक महापुरुपों ने वहां की यात्रा की है। स्वामी विवेकानंद की जीवनी में उनके अमरनाथ-दर्शन के विषय मे लिखा है, "तव वह महत्त्वपूर्ण कन्दरा पर पहुंचे, जहां उन्हे शिव के सान्निव्य का अनुभव हो रहा था। भावुकता से उनका शरीर सिहर रहा था। कन्दरा इतनी वड़ी थी कि उसमे एक गिरजा समा सकता था और ऐसा प्रतीत होता था, मानों शिव अपने सिंहासन पर विराजमान

हैं। तव शिव के प्रति भक्तिभावों से प्रदीप्त मुख लिये, भस्म रमाये, अंगोछा पहने उन्होंने कन्दरा में प्रवेश किया और घुटनों के वल झुक कर प्रणाम किया। उस समय के गाभीर्य और सहस्रो कण्ठो से मुखरित स्तुति-ध्वनि तथा हिम-लिंग की पवित्रता ने स्वामीजी को मुग्ध कर दिया। वे मूर्च्छित-से हो गये। उनके मन में एक गुप्त प्रकाश हुआ, जिसके विषय मे उन्होने कभी चर्चा नहीं की। केवल इतना वताया कि शिव ने स्वयं दर्शन देकर उन्हे अमरनाथ का वर प्रदान किया है, अर्थात् स्वेच्छा के विना उनकी मृत्यु नही होगी। क्या यह वही नही हुआ, जो उनके गुरुदेव ने कहा था कि जव वह (विवेकानंद) यह जान जायंगे कि वह कौन है और क्या है, तव वह अपना शरीर त्याग देंगे?"

वाद मे उन्होंने अपनी एक यूरोपियन शिष्या से कहा, "लिंग स्वयं शिव थे। वहां भक्ति थी, केवल भक्ति। मैंने आज तक कभी इतना सुन्दर और इतना प्रेरणादायक और कुछ नही देखा।"

स्वामी रामतीर्थ के संवंध मे 'राम-वर्षा' पुस्तक मे लिखा है, "स्वामीजी यात्रा से लौटे तो उनके हृदय की शांति और पवित्रता की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल गई।"

भारत के अतिरिक्त विदेशों के भी अनेक पर्यटक वहां आये है और अव भी आते रहते हैं। एक अमरीकन यात्री ने लिखा है, "लिंग आश्चर्यजनक एवं अद्‌भुत था। एक इतर हिन्दू को भी लिंग के घटते-वढ़ते रहने के कारण इस प्राकृतिक वास्तविकता के सृजनकर्त्ता के सम्मुख सिर झुकाना पड़ता है।"

एक पुर्तगाली महिला तो अमरनाथ के दर्शन कर इतनी अभिभूत हो गई कि उन्होने लिखा, "मेरा अनुमान है कि मै अपने जीवन मे फिर कभी अमरनाथ जैसे पवित्र, शांतिमय और चिर-स्मरणीय स्थान को और कही नही देख सकूगी।"

एक अंग्रेज यात्री का भी कथन सुन लीजिये, "वह विचार, जिसमे यात्री एकाग्र-चित्त होकर अपने सामान्य कामधंधे से

वंचित हो जाते हैं, और बर्फ के उन आकर्षक दृश्यों में लीन हो जाते हैं, जहां प्रकृति के बनाने वाले के हाथ पूर्णशक्ति के साथ दृष्टिगोचर होते हैं, कभी यात्रियों के हृदय को प्रभावित करने तथा उनकी आत्मा को उन्नति की ओर ले जाने में असफल नही हो सकता।"

एक दूसरे अंग्रेज ने लिखा है, "इसका कण-कण सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व का साक्षी है।"

'पंचतरंणी' मे भी अमरनाथ का सुन्दर वर्णन आता है।

एक जापानी पर्यटक ने इन शब्दों में अपने उद्गार प्रकट किये है, "मैने सारी दुनिया की सैर की, पर्वतों और वनों मे विचरण किया, मगर काश्मीर में अमरनाथ की गुफा में जाकर हृदय को जो शांति मिली, वह कही नहीं मिली।"

: १९ :

'नीरो पुराये'

अमरनाथ से लौट कर दो दिन पहलगांव मे रहे। नदी के किनारे हमारा तम्बू लगा था, श्यामलालभाई ने विजली भी लगवा दी थी। विचार था कि एक सप्ताह वहां रहेंगे, पर विट्ठल-जी को जल्दी ही गोरखपुर लौटना था। इसलिए दो दिन में थकान मिटाकर और पहलगाम के असाधारण सौदर्य का आनंद लेकर १६ तारीख को दोपहर वाद १। वजे की वस से श्रीनगर से रवाना हुए। चलते समय श्यामलालभाई, टेलरमास्टर, रम-जान, गुलाम नवी पहुंचाने वस के अड्डे पर आये। श्यामलाल-भाई वार-वार कहते थे कि कोई गलती हो गई हो तो माफ करना। गुलाम नवी की आंखें डवडवा रही थी। रमजान कहता था कि आगे आप जरूर आवे और मुझे चिट्ठी लिख दे। हम लोगों का



श्रीनगर के निकट का मनोहारी मार्ग

दोनो ओर वृक्षो की पक्तिया प्रहरी की भाति खडी है ।

वनिहाल की घाटी
संसार का सबसे
ऊंचा रास्ता



वेरीनाग
झेलम का
उद्गम

शंकराचार्य
का मंदिर



न तीर्थ
का एक
दृश्य

अवन्तीपु
का
म



पहलगाम के रास्ते में लिदर नदी का एक दृश्य
नदी ने इस भूभाग को अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है ।

कलकल निनाद करती सतत-प्रवाहिनी लिदर

शाली (धान) के खे



पहलगाम का एक दृश्य
अग्रभाग मे लिदर की एक धारा

गाम का बाजार

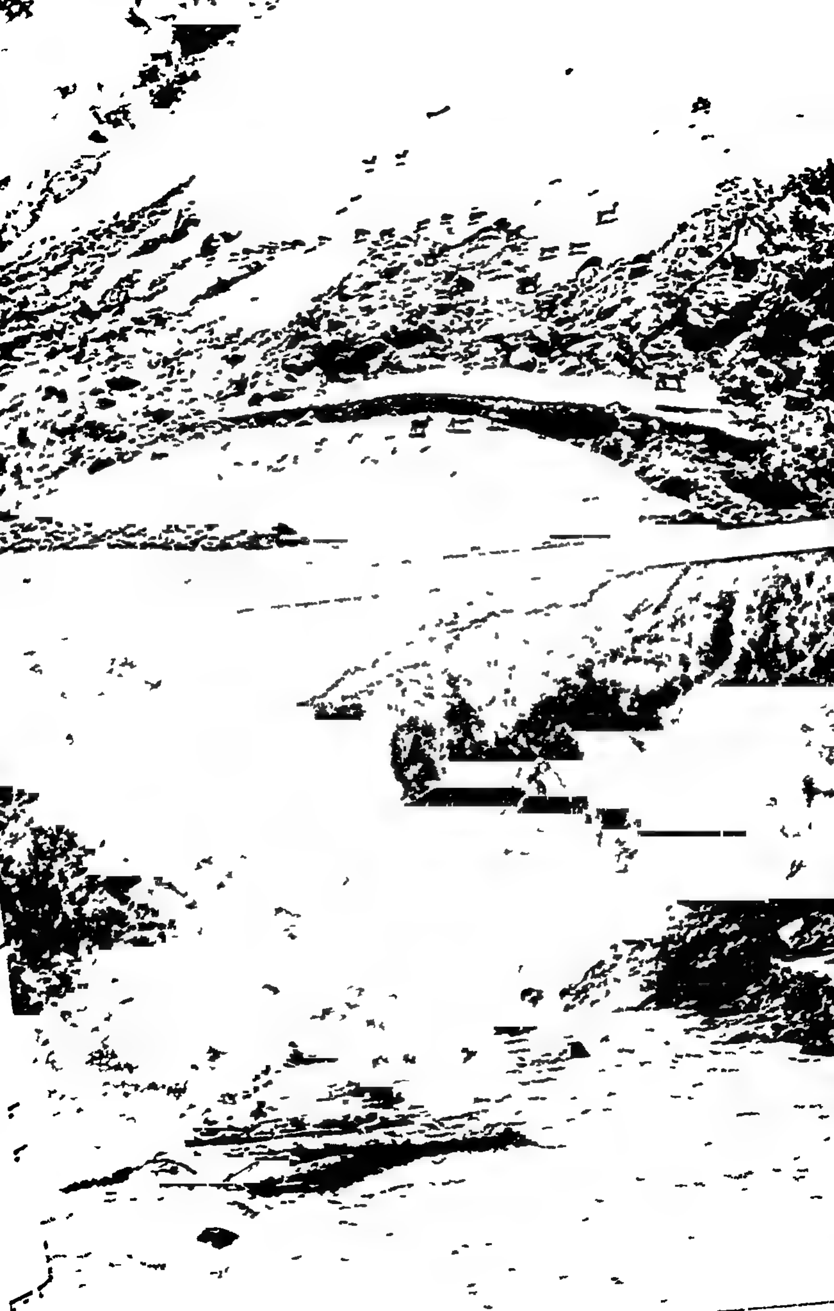


यात्रा के लिए
उद्यत हमारी
टोली

हिमाच

मार्ग
मनो

पहला



वायुजन में हमारी सयुक्त टोली

जोजपाल

शेषनाग की हिममडित चोटियां—ब्रह्मा, विष्णु, महेश



शेषनाग झील

डांडी और टट्टू पर जाते हुए यात्री

अंतिम पड़ाव : पंच-तरणी

अमरनाथ की घाटी के दो दृश्य

→
कैलास-दर्शन

अमरनाथ की गुफा

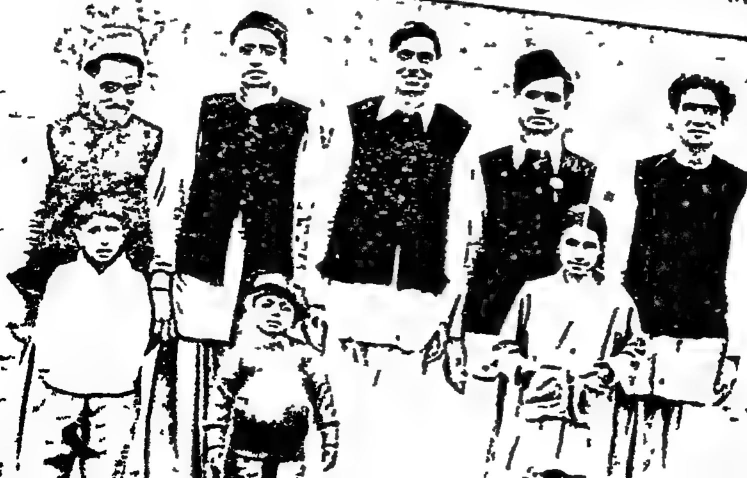
गुफा में

वर्फ पार करती हमारी टोली →



यात्रा से वापसी पर पहलगाम में

पहलगाम गांधी-आश्रम के कार्यकर्ता



थोड़ा ही साथ रहा था, लेकिन इन लोगो की आत्मीयता ने हम लोगो के हृदयो को गद्गद् कर दिया। हमने सबके प्रेम के लिए आभार प्रकट किया, और यह आश्वासन देकर कि हम फिर आवेगे, वहां से रवाना हो गये। लिदर नदी और घाटी का सौदर्य वड़ा लुभावना प्रतीत हो रहा था और चिलकती धूप के कारण वह और भी आकर्षक जान पडता था, लेकिन समय की तगी के कारण हमे उससे विदा लेनी पड़ी।

वहां से चल कर हम मटन पहुंचे। काशीनाथ पंडा ने कहा था कि वह वहां मिलेंगे, लेकिन नही मिले। मटन मे थोड़ी देर रुककर उसके प्रपात का जल पीकर आगे वढ़े।

पहलगाम से कुछ वसे सीधी श्रीनगर आती है, कुछ रास्ते मे इधर-उधर पड़ने वाले दर्शनीय स्थानो को दिखाती हुई आती है। उनमे सीधी आने वाली वसों की अपेक्षा किराया कुछ अधिक लगता है। हम लोगों का इरादा दर्शनीय स्थलो को देखते हुए लौटने का था, कारण कि इधर से हम लोग सीधी वस से गये थे और कई स्थान देखने से छूट गये थे।

मटन के वाद अनंतनाग पहुचे। यह वहुत वड़ा नगर है। पहाड़ी की तलहटी मे वसा है। यहां अनेक झरने है। यहां का दर्शनीय झरना 'मलखनाग' है। यहां पर दो कुण्ड है। गंधक का झरना है। अनंतनाग से ६ मील पर अच्छावल है, जिसका निर्माण शाहजहां ने किया था। यहां पर एक सुन्दर उद्यान है, जिसमे झरना वहता है। वीच मे एक वारहदरी है, जिसके इधर-उधर वहुत से फव्वारे उसके सौदर्य मे चार चाद लगाते है। यहा मत्स्य उद्योग अच्छी तरह से होता है। अच्छावल से १० मील पर कुकरनाग है, जहा का जलवायु काश्मीर भर मे सर्वोत्तम माना जाता है।

ये स्थान देखने मे काफी समय लग गया। हमारी वस अव तेजी से श्रीनगर की ओर दौड़ी। रास्ते मे शाली (धान) के खेत

दूर-दूर तक फैले थे, जिनमें काश्मीरी पुरुष-स्त्रियां काम कर रहे थे। डूवते सूर्य के प्रकाश में ये खेत बड़े अच्छे लगते थे।

कृष्णावहन के यहां पहुंचे तवतक कुछ-कुछ अंधेरा हो गया था। कृष्णाबहन वड़ी खुश हुईं कि हम अमरनाथ की यात्रा कर आये और जव उन्होंने सारा हाल सुना तो वह और भी प्रसन्न हुईं कि यात्रा सानंद सम्पन्न हुई।

अगला दिन हम लोगों ने श्रीनगर के वगीचे देखने में विताया। चश्माशाही, निशात, शालीमार सव देखे। वड़े अच्छे लगे, लेकिन पानी की कमी के कारण उनमें विशेष रौनक नहीं थी। शालीमार के झरने और नहर तो एकदम सूखे पड़े थे।

१८ तारीख को विट्ठलजी हवाई जहाज से दिल्ली रवाना हुए। हम लोगों का जी नहीं माना। निश्चय किया कि चार-पांच दिन श्रीनगर और रहेंगे। विट्ठलजी को विदा करके वाजार में घूमते रहे। अगले दिन गुलमर्ग जाने के लिए सीटें वुक कराईं।

१९ तारीख को सवेरे ९॥ वजे वस से रवाना होकर टंगमर्ग पहुंचे। श्रीनगर से यह स्थान लगभग २८ मील है। वस यहां तक आती है। आगे टट्टुओं पर जाते हैं। हम लोग ११॥ वजे वहां पहुंचे और तत्काल टट्टू लेकर गुलमर्ग को रवाना हो गये। गुलमर्ग वहां से ३ मील है। ऊंचाई लगभग १० हजार फुट। स्थान वड़ा सुन्दर है। प्राकृतिक दृश्य अद्भुत है। अंग्रेजों के जमाने में यहां वड़ी चहल-पहल रहती थी, अव तो उजड़ा-सा पड़ा था। इसका एक कारण यह भी था कि यात्रा का मौसम खत्म हो चुका था। गुलमर्ग के चारों ओर देवदार और चीड़ के घने वृक्ष हैं। मई से सितम्वर के शुरू तक यहां काफी भीड़-भाड़ रहती है। यहां का मैदान वड़ा विशाल है। उसमें लोग पोलो खेलते हैं। गुलमर्ग से ढाई-तीन मील पर खिलनमर्ग है। वहां पर्वत के शिखर पर एक विस्तृत मैदान है। वहां से नंगा पर्वत की हिमाच्छादित मालाएं वड़ी भव्य लगती हैं। यह स्थान विल्कुल खुला है। ठह-

रने के लिए कोई भी जगह नही है। ऊपर थोड़ी दूर पर अलपत्थर झील है, लेकिन समयाभाव के कारण हम लोग खिलनमर्ग से ही लौट आये। शाम को सात वजे श्रीनगर पहुंचे।

अगले दिन काश्मीर के प्रधान मंत्री श्री गुलाम मुहम्मद वख्शी ने वुलाया। काफी देर तक वातचीत होती रही। उन्होंने वताया कि वह काश्मीर की चहुमुखी उन्नति के लिए कितने प्रयत्नशील है और वहा क्या-क्या काम हो रहे है।

२१ तारीख का सारा दिन सामान खरीदने मे गया। २२ को चलने का विचार था। इसलिए एक ही दिन अपने पास था। बाद मे वस के दफ्तर मे गये तो पता चला कि २३ तारीख से पहले सीट नही मिल सकती। २३ तारीख की पहली वस से सीटे रिजर्व कराई।

२२ तारीख का दिन काश्मीर एम्पोरियम देखने तथा इधर-उधर निरुद्देश्य घूमने मे विताया। शाम को वख्शी साहव ने अपने यहां भोजन करने वुलाया। अ० भा० समाचार-पत्र-सम्पादक-सम्मेलन की स्थायी समिति के अधिवेशन मे आये हुए अनेक सम्पादक भी वुलाये गये थे। काश्मीरी सगीत का कार्यक्रम वड़ा अच्छा था। वही पर प्रथम वार काश्मीरी वाद्य देखे। रात को देर तक मनोरजन होता रहा।

२३ तारीख को वड़े सवेरे तैयार होकर वस के अड्डे पर आये। कृष्णावहन और रामसुमेरभाई की सास, माताजी, विदाई देने आई थी। सामान तुलवाया। वैठे-वैठे काफी समय वीत गया। कई वसे छूट गई, लेकिन हम लोगो की वारी नहीं आई। हम वार-वार पूछते थे, पर एक ही जवाव मिलता था कि अभी लीजिए। होते-होते एक घंटा निकला, दो निकले, तव भी वारी न आई तो हम लोगों का धीरज छूटने लगा। एक भी वस शेष नही रही थी। तव मैनेजर ने एक ओर ले जाकर वताया कि हम लोगों ने रिजर्वेशन तो करा लिया था, लेकिन क्लर्क की गलती से आज के जाने

वाले यात्रियो के रजिस्टर मे हमारा नाम लिखने से रह गया। अंत मे आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा, "गलती हमारी है। हम भुगतेगे और आपको सवारी देगे, आप फिक्र न करे।" फिर राह देखी। ज्यों-ज्यों समय आगे वढ़ता जाता था, अनिश्चित अवस्था की हैरानी बढ़ती जाती थी। जैसे-तैसे एक स्टेशन वैगन मिली। उससे रवाना हुए तो १०। वजे थे। मोटर मे हम लोगों के अतिरिक्त एक यात्री और था। देर जरूर हुई, पर गाड़ी आराम की मिल गई। वैसे लेते तो उसके लिए बहुत रुपये देने पड़ते।

श्रीनगर से निकलते ही वादल घिरने लगे और आगे चलकर वूदावांदी शुरू हो गई। हम सब लोग थोड़ी देर तक चर्चा करते रहे, फिर मौन हो गये। मेरा मन बार-बार दौड़कर पीछे जाता था। कितना सुन्दर है यह देश। प्रकृति-रानी ने अपना सवकुछ यहां की भूमि और उस पर बसने वाले नर-नारियो पर न्यौछावर कर दिया है। यहां की नदियों, घाटियो, झरनों, पर्वतों, झीलों, वाग-बगीचों आदि ने इसे वह रूप प्रदान किया है, जो विश्व मे अनूठा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टिकर्त्ता ने किसी बहुत ही उदात्त क्षण मे इस भूप्रदेश का निर्माण किया होगा। प्राकृतिक सौदर्य की वह खान है। पर...यह 'पर' क्या है, जो वहा की धवलता पर एक काला धब्बा लगा देती है ? वह है वहां की गरीवी और दैन्य, निरक्षरता और गंदगी !...ऐसा क्यो है ? इसके अनेक कारण है। शायद सबसे वड़ा कारण यह है कि गंदगी और गरीवी के प्रति वहां के मानव की चेतना लुप्त हो गई है।

"मुश्किले इतनी पड़ी हमपर कि आसां हो गई।"

विचार-धारा जाने कहां-कहां दौड़ती रही। मोटर तेजी से अपने रास्ते पर चली जा रही थी। ड्राइवर वड़ा रसिक था। वीच-वीच मे कुछ कह कर हम लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता था।

काजीगुण्ड से वर्षा प्रारंभ हो गई। हम लोगों को चिंता हुई

कि कही रास्ता खराव न हो जाय, पर ड्राइवर वेफिक्र था। कहता था कि ड्राइवरी मेरा पुश्तैनी पेशा है और सब मौसमो मे गाडी चलाने का मेरा अभ्यास है।

काजीगुण्ड के आगे से जब चढाई शुरू हुई तो वारिश और तेज हो गई, पर ड्राइवर पर उसका कोई असर नही पड़ा। गाड़ी के शीशे उसने वद करा दिये और मस्ती के साथ गाडी चलाता रहा। वर्षा के कारण दृश्यो की शोभा और बढ गई। पानी से धुल कर वृक्ष खूब हरे-भरे दीखने लगे। ऐसा लगता था मानो हम लोग किसी स्वप्न-लोक मे यात्रा कर रहे है।

काश्मीर घाटी पार कर जव पीरपचाल पहुचे तो वादल वहुत ही घने हो गये थे। हम लोग सुरग के निकट मोटर से उतर पडे। ड्राइवर ने कहा कि देखिये, ऊपर से गिरने पर यहा क्या हाल हो सकता है। इतना कहकर उसने एक वड़ा-सा पत्थर नीचे लुढका दिया। हम लोगो के देखते-देखते वह चकनाचूर होकर नीचे पहुचा। ड्राइवर ने वताया कि तनिक-सी असावधानी पर यहा ऐसा हो जाता है।

सुरंग से पार होकर हम लोग जम्मू घाटी मे आ गये। हम पहले ही वता चुके है कि पीरपंचाल काश्मीर को दो भागो मे बाट देती है। एक ओर जम्मू घाटी है, दूसरी ओर काश्मीर घाटी। जम्मू घाटी का अपना महत्व है, पर जो सौदर्य काश्मीर घाटी मे है, वह इसमे नही।

वर्षा होने के कारण रास्ता इतना रपटीला हो गया था कि कई अवसरो पर गाडी रपटते-रपटते वची। ड्राइवर बडा कुशल था। उसने संभाल ली। रामवन, वटोत, कुद, सव वारिश मे पार किये। सर्दी खूव थी। कुद पर वरसते पानी मे चाय पी।

जम्मू पहुंचे तवतक रात हो चुकी थी। वर्षा हो रही थी। यहा हमे यह गाड़ी छोड़ देनी थी। दूसरी से पठानकोट जाना था।

डाक वंगले मे गाडी के रुकने पर हम लोगो ने स्थान की खोज

की। होटलों का चक्कर लगाया, लेकिन सब होटल भरे हुए थे। आखिर रघुनाथजी की धर्मशाला में दो कमरे लेकर सामान रक्खा। कमरे क्या थे, घुड़साल समझिये। पानी पड़ रहा था। धर्मशाला मे टट्टियों की व्यवस्था नही थी। बड़ी परेशानी हुई, लेकिन आगे और जो मुसीबत आई, उसके सामने यह परेशानी गौण हो गई। वर्षा का वेग उत्तरोत्तर बढ़ता गया और कमरों की छतें जोरों से चूने लगी। यहां तक नौबत आई कि दोनों मे से किसी भी कमरे में तिल भर स्थान बिना पानी के न रहा। हम लोगो ने जब छते चूनी शुरू हुईं तब कुछ स्थानों पर बर्तन रख-रख कर बचत करनी चाही, लेकिन कमरे का सारा फर्श जलमय होने लगा तो एक समस्या खड़ी हो गई। बिस्तर समेट-समेट कर हम लोग कमरों की परिक्रमा कर चुके थे। अब बिस्तर समेटे और उन पर बैठकर ऊपर छाते तान लिये। लेकिन उससे क्या बचाव होने वाला था! सारी रात पानी पड़ता रहा और हम लोग उसका इसी प्रकार सामना करते रहे। एक ही सहारा था और वह यह कि सवेरे तो चल ही देना है।

बड़ी मुश्किल से रात कटी। एक क्षण को भी नीद नही आई। सवेरा हुआ। उठकर बस के अड्डे पर गया तो पता चला कि बारिश के कारण पठानकोट और श्रीनगर, दोनो ओर का रास्ता बंद है। उस समय मन पर क्या बीती, पाठक सहज ही अनुमान नही कर सकते। सड़क पर नहरे बह रही थी और कमरे झील बन गये थे। हे भगवान्, दिन कैसे कटेगा? और कौन जाने कि बारिश कब बंद होगी और रास्ता कब जाने योग्य होगा!

फिर होटलों मे चक्कर लगाना शुरू किया, पर कही जगह खाली नही थी। पंजाबी धर्मशाला मे गये, वह भी भरी थी। क्या करें, कुछ सूझता नही था। आखिर शाम को पता चला कि एक होटल में एक कमरा खाली है। हम लोगों को तो रात काटनी थी और क्या पता कि कितने दिन वहां रुकना पड़े! जल्दी-जल्दी

सामान उठवाया। संयोग की वात देखिये कि सामान उठवा कर वाहर लाये तो पानी वहुत धीमा हो गया और ज्योंही होटल मे पहुंचे कि फिर जोर से पड़ने लगा।

होटल मे सामान रखकर जान-मे-जान आई। रात भर के जगे थे, दिन भर के थके और हैरान थे, गरम पानी मंगवा कर खूव नहाये।

सारी रात पानी पड़ता रहा। अव हम लोग अपेक्षाकृत आराम से थे, लेकिन चिंता थी कि यही हाल रहा तो कई दिन जम्मू मे पड़ा रहना पड़ेगा।

रात को खूव सोये। सवेरे उठकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि पठानकोट से गाड़ियां आने की सूचना मिली है। हम लोग उत्सुकता से उनके आने की राह देखने लगे।

८ वजे के करीव पहली गाड़ी आई। यात्रियों से मालूम हुआ कि रास्ता विल्कुल साफ तो नही है, पर गाड़ियां जा सकती हैं। वस अधिकारियों से पूछा तो उन्होंने वतलाया कि वे गाड़ियां छोड़ने की व्यवस्था कर रहे हैं।

९-१० वजे के लगभग हमारी वस चली तव वूदावांदी हो रही थी। रास्ता वास्तव मे कई स्थानो पर वहुत ही खराव हो गया था। पानी के वहाव ने सड़क को जगह-जगह काट डाला था। वहुत-सी जगहों पर वहकर पत्थर इकट्ठे हो गये थे, जिससे रास्ता ऊवड़-खावड़ हो गया था। दो-एक जगह तो ऐसा लगा कि हमारी वस फंस जायगी।

राम-राम करते हुए दोपहर को १ वजे पठानकोट पहुंचे। निकल आये यह क्या कम वात थी। वाद मे मालूम हुआ कि वारिश फिर जोरो से आई और लगभग एक सप्ताह तक रास्ता वद रहा। हम लोग भी उस दिन न निकल आये होते तो शायद एक सप्ताह तक जम्मू मे पड़ा रहना पड़ता। सामान प्लेटफार्म पर रखवा कर वेटिंग रूम मे खूव अच्छी तरह से हाथ-मुह धोया और

होटल मे गरम-गरम ताजा भोजन किया।

शाम को ५।। बजे की गाड़ी से रवाना होकर २६ तारीख की सुबह ६ बजे दिल्ली पहुंच गये। इस प्रकार २३ दिन नंदनकानन में बिता कर मर्त्यलोक के प्राणी फिर मर्त्यलोक मे आ गये।

इस चिरस्मरणीय यात्रा को हुए कई महीने बीत चुके है, लेकिन रह-रह कर काश्मीर की याद आती है, वहा के सुन्दर दृश्य आंखों के आगे घूमते हैं। अमरनाथ फिर जाने को जी करता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में आज भी "काश्मीर का स्वर्गीय जादूभरा नाद कानों मे गूज रहा है और उसकी याद दिल को सताती है। जो व्यक्ति उसके जादू मे फस गया है, वह उससे कैसे छुटकारा पा सकता है?"



परिशिष्ट

: १ :

आवश्यक सूचनाएं और सामान

अमरनाथ की यात्रा वास्तव में वड़ी कठिन है और यात्रियों को यह सोच कर ही जाना चाहिए कि रास्ते मे उन्हें काफी मुसीवते उठानी पड़ेगी। इसलिए अगर किसी मे हिम्मत की कमी हो तो उसे जाने से पहले दस वार सोच लेना चाहिए।

दुर्वल या रोगी यात्रियो को पैदल जाने का खतरा नही उठाना चाहिए। वैसे वहुत से लोग पैदल जाते है और जो आनद पैदल चलने में आता है, वह टट्टू पर अथवा डांडी मे आ ही नही सकता। फिर भी चढ़ाइया और उतराइया इतनी अधिक है कि कमजोर या वीमार लोग रास्ते मे ही हिम्मत हार सकते है। इसलिए उन्हे अपनी स्थिति के अनुसार पहलगाम से डाडी कर लेनी चाहिए या टट्टू। रास्ते मे कुछ भी नही मिलता।

ठहरने की व्यवस्था चंदनवाड़ी, वायुजन तथा पचतरणी मे है। ये सव स्थान एक-दूसरे से थोड़े ही फासले पर है। यदि अपने साथ तम्वू न हो तो इन्ही स्थानो पर रात विताना उचित होगा। रात को सर्दी इतनी अधिक होती है कि खुले मे ठहरना जान को खतरे में डालना है। सर्दी के अतिरिक्त वहा कभी भी वर्षा हो सकती है। इसलिए ठहरने के संवंध में यात्रियो को पूरी सावधानी वरतनी चाहिए।

आने-जाने मे ५६ मील का सफर होता है। भूख खूव लगती है। यात्री प्राय. अधिक खा जाते है। उसका परिणाम भी भुगतना पडता है। यात्रियां को चाहिए कि भूख से थोड़ा कम ही खाये।

अधिक बार खाना पड़े, इसमें बुराई नही है, लेकिन ठूस-ठूस कर खाने से तवीयत के खराब हो जाने का पूरा अंदेशा है। भोजन हल्का हो, यह भी जरूरी है।

निचाई की ओर बार-बार देखने या लगातार देखने मे चक्कर आ जाते हैं। जहां तक हो सके, यात्रियों को अपनी दृष्टि चारों ओर रखनी चाहिए।

इस यात्रा मे आदमी का सबसे उत्तम साथी टट्टू है। उसके ऊपर अपने को छोड़ दीजिये तो कोई खतरा नही है। टट्टू बहुत ही सधे हुए है और उन्हे दौड़ाया न जाय या उनके साथ उतावली न की जाय तो वे मजे में यात्रा करा सकते है। लेकिन बहुत से यात्रियों को धीरज नहीं होता। वे जल्दी-से-जल्दी अमरनाथ पहुंचना और लौट आना चाहते हैं। अपनी उतावली और अधीरता के कारण वे स्वयं धोखा खाते है और टट्टू के प्राण भी संकट मे डालते है। यात्रा खूब मजे-मजे मे करनी चाहिए।

पहले पड़ाव चंदनवाड़ी को छोड़कर आगे खाने को कही कुछ भी नही मिलता। इसलिए भोजन की व्यवस्था पहलगाम से ही कर लेनी चाहिए।

सामान जितना अनिवार्य हो, उतना ही ले जाना उचित होगा। हमें एक सज्जन अपने साथ मेज-कुर्सिया, टी सेट, ट्रे, पलंग, कमोड आदि ले जाते हुए मिले, मानो वे पूरा दीवानखाना और रसोईघर सजाने जा रहे हों। इस यात्रा के लिए ऐसी चीजे अनावश्यक हैं।

शौचादि के लिए वहां खुले मे जाना होता है। सर्दी के मारे यात्री दूर न जाकर पास ही बैठ जाते है। इससे गंदगी होती हैं और बाद मे आने वाले यात्रियों को बड़ी हैरानी होती है। बीमारी का भी डर रहता है। जहां तक हो सके, निवृत्त होने के लिए दूर निकल जाना चाहिए। उससे टहलने का टहलना हो जायगा, गंदगी भी नहीं होने पायगी।

जोजपाल से लेकर पंचतरणी तक हवा कुछ ऐसी है कि प्राय: यात्रियों को सांस लेने मे कठिनाई होती है। उससे घवराना नही चाहिए। अच्छी नीद न आवे तो भी परेशान होने की जरूरत नही है। यात्रियो को टट्टू पर बैठने का अभ्यास न होने के कारण उन्हे थकान वहुत हो जाती है और इसलिए भी उन्हे नीद नही आती, या कम आती है। उसकी पूर्त्ति लौटकर पहलगाम मे हो जाती है।

यात्रा मे एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ वड़ी भयंकर चीज है। रास्ता वेहद संकीर्ण और ढलवां है। जरा-सा धक्का लगा या पैर फिसला कि फिर पता नही चलता। वहा चलने मे जल्दवाजी या प्रतिद्वन्द्विता कदापि न होनी चाहिए।

जोजपाल तक तरह-तरह के पेड़ मिलते है। उन पर फल भी होते है। लेकिन विना किसी जानकार से पूछे कभी कोई फल नही खाना चाहिए। न कोई फूल या जड़ी-वूटी सूघनी या चखनी चाहिए। इनमे कई विपैली होती है, जिनसे मृत्यु हो सकती है या मूर्च्छा आ सकती है।

यात्रा के लिए सवसे अच्छा समय मौसम की दृष्टि से श्रावण और भाद्रपद के वीच का होता है, लेकिन जव भी यात्रा की जाय, यह देख लिया जाय कि पानी पड़ने का अंदेशा तो नही है। वर्षा और सर्दी, ये दोनों मौसम वहां के लिए अनुकूल नही है।

जितने सुमति और विनोदी स्वभाव के लोगों का साथ होगा, यात्रा उतनी ही आनद-प्रद होगी। सगी-साथी का चुनाव सावधानी से करना चाहिए। अश्रद्धालु, डरपोक और वात-वात पर मुंह चढ़ाने या आंसू ढरकाने वाले साथी यात्रा का सारा आनंद मिट्टी कर देते है।

रास्ते मे स्थान-स्थान पर झरने पड़ते है। उनमें वार-वार पानी पीना ठीक नही है। टट्टू वाले जानते है कि किन झरनो का पानी अच्छा है। इसलिए उनसे पूछकर या पहलगाम से पूरी

जानकारी लेकर पानी पीना चाहिए।

लौग, इलायची, पिपरमेंट, अमृतधारा, लेमनचूस आदि जेब मे रहने चाहिए। जी मिचलाने की शिकायत होने पर इनसे बड़ी सहायता मिलती है। सर्दी से बचाव के लिए थोड़ी-सी केसर का उपयोग भी लाभप्रद होता है। पेट हल्का रहे तो इनमे से किसी की भी जरूरत न पडे। आकस्मिक चोट के लिए टिंचर आयोडिन और मरकरी क्रोम भी साथ रखने चाहिए।

टट्टू वाले अपनी बचत के लिए दूसरे दिन ही लौटने का आग्रह करते है। तीन दिन से अधिक तो लगने ही नही देते। इस बारे मे अपनी सामर्थ्य देख लेनी चाहिए और उनकी जल्दी को नही मानना चाहिए। यात्रा जितनी मजे-मजे मे की जायगी उतना ही आनद आयगा।

यात्रियों की सुविधा और यात्रा की आवश्यक व्यवस्था के लिए पहलगाम मे विजिटर्स ब्यूरो है। टट्टू, डाडी आदि तय करने मे उसकी मदद ली जा सकती है, लेकिन ध्यान रहे कि ब्यूरो की मदद से टट्टू या डांडी सरकारी दर पर मिलते है, जो सामान्य दर से कुछ अधिक है। स्वतंत्र व्यवस्था की जाय तो पहले तय कर लेना चाहिए, जिससे बाद मे झगड़ा न हो। दाम वहा बहुत बढ़ा-चढ़ाकर मागे जाते है, यह भी ध्यान रखना चाहिए।

चलने से पहले यात्रा का साहित्य पढ लेना चाहिए, जिससे सब चीजे अच्छी तरह से देखी जा सके और कुछ छूटे नही।

महिलाओ को साड़ी पहनकर टट्टू पर बैठने मे असुविधा होती है। इसलिए उन्हे सिलवार, पतलून या पाजामे की व्यवस्था रखनी चाहिए।

ओढ़ने-बिछाने के कपड़े अपनी आदत के अनुसार लिये जा सकते है, पर हमारा अनुमान है कि बिछाने के लिए एक गद्दा और ओढने के लिए एक रजाई या तीन-चार कम्बल होने ही चाहिए।

पहनने के लिए कुरता-कमीज या धोती-पाजामे का एक

अतिरिक्त सेट काफी होगा। पूरी बांह का एक स्वेटर, कोट, ओवरकोट, मफलर, सिर मे सर्दी लगती हो तो टोपा, गरम मोजे, दस्ताने, गरम पाजामा या पतलून और मजबूत जूते होने चाहिए। यदि कोई अमरनाथ पर स्नान करके कपड़े न बदलना चाहे तो जो पहनकर जायं वही कपड़े तीन दिन काम दे सकते हैं। जितना बोझ कम हो, अच्छा है।

पड़ावो पर ठहरने की व्यवस्था बहुत अच्छी नही है। छत की टीनों मे इतने छेद है कि अदर बैठ कर आसमान के तारे देखे जा सकते है। अत. हो सके तो साथियो की संख्या के अनुसार एक-दो तम्बू पहलगाम से किराए पर लेकर चलना चाहिए।

भोजन की चीजो मे चावल, हरी सब्जियां, फल, घी, मसाले आदि ले लेने चाहिए। पकाने के बर्तन, एक अंगीठी, कोयला, भी जरूरी है। बहुत से यात्री तीन दिन का खाना बनवा कर पहलगाम से साथ ले जाते है। यह ठीक नही है। बासी भोजन से सुस्ती आती है और कभी-कभी तबीयत भी बिगड़ जाती है।

चाय पीने की आदत हो तो चाय, चीनी और जमे दूध का एक डिब्बा साथ रख लेना चाहिए। सूखी मेवा—बादाम, किशमिश, अखरोट, काजू जरूर साथ होने चाहिए। टार्च, लालटेन, मिट्टी का तेल, मोमबत्ती, दियासलाई भी जरूरी है।

सर्दी और धूप के कारण चेहरे, विशेषकर नाक और माथे की चमड़ी उधड जाती है। उसके बचाव के लिए वैसलीन की एक शीशी रक्खे और रात को सोते समय मुह पर जरूर चुपड़ ले।

पैदल चलने मे सहारे के लिए पहलगाम मे लाठी मिलती है, जिसके नीचे लोहे की नुकीली कील रहती है। उससे चढाई पर बड़ी मदद मिलती है और फिसलन में रुकावट होती है। प्रत्येक यात्री के लिए एक-एक लाठी अवश्य ले लेनी चाहिए। बरफ पर चलने मे तो वह बहुत ही काम आती है।

हर यात्री के लिए एक टट्टू सवारी का आवश्यक है।

सामान के लिए जरूरत के हिसाब से कई यात्री मिल कर व्यवस्था कर सकते हैं। सरकारी दर से १७॥) में सवारी का टट्टू मिलता है, १५)में लद्दू। इसमें आना-जाना दोनों शामिल है। डांडी ८०-८५) मे होती हैं।

यदि सर्दी अधिक हो तो थोड़ी-सी ब्रांडी भी साथ रक्खी जा सकती है।

इस दुर्लभ यात्रा की स्मृति को स्थायित्व देने के लिए एक अच्छा-सा कैमरा जरूर साथ होना चाहिए। पहलगाम से अमरनाथ तक आने-जाने में सैकड़ों दृश्य ऐसे आते हैं,जिनके चित्रलेने चाहिए। फिल्में जितनी अधिक हों, अच्छा है। हम लोगों के पास फिल्मे कम होने के कारण बहुत से सुन्दर दृश्य छूट गये। रास्ते में फिल्मे मिलती नही। यात्रियों को चाहिए कि कम-से-कम एक दर्जन फिल्में इस यात्रा के लिए साथ मे जरूर रक्खें।

: २ :

अमरनाथ : एक निगाह में

स्थान	फासला	ऊंचाई
१. श्रीनगर		५३०० फुट समुद्र तट से
२. अनंतनाग	३४ मील	५२४० ,, ,, ,,
३. पहलगाम	२५ मील	७२०० ,, ,, ,,
४. चंदनवाड़ी	८ मील	९५०० ,, ,, ,,
५. शेषनाग	७ मील	११,७३० ,, ,, ,,
६. वायुजन	१ मील	१३,००० ,, ,, ,,
७. महागुनस	३ मील	१४,७०० ,, ,, ,,
८. पंचतरणी	५ मील	१२,००० ,, ,, ,,
९. अमरनाथ	४ मील	१२,७२९ ,, ,, ,,

श्रीनगर से अमरनाथ ८७ मील

पहलगाम से अमरनाथ २८ मील

सूचना-केन्द्र

१. विज़िटर्स ब्यूरो, जम्मू एण्ड काश्मीर गवर्नमेंट,
रेजीडेंसी रोड,
श्रीनगर

२. दी गवर्नमेंट ऑव इंडिया टूरिस्ट इन्फार्मेशन आफिस,
रेंजीडेंसी रोड,
श्रीनगर

३. रीजनल टूरिस्ट आफीसर
टर्मीनस विक्टोरिया,
बबई

४. रीजनल टूरिस्ट आफीसर
एस्प्लेनेड मैशन,
१४-१६, गवर्नमेंट प्लेस,
कलकत्ता

५. रीजनल टूरिस्ट आफीसर,
८८, क्वीन्सवे,
नई दिल्ली

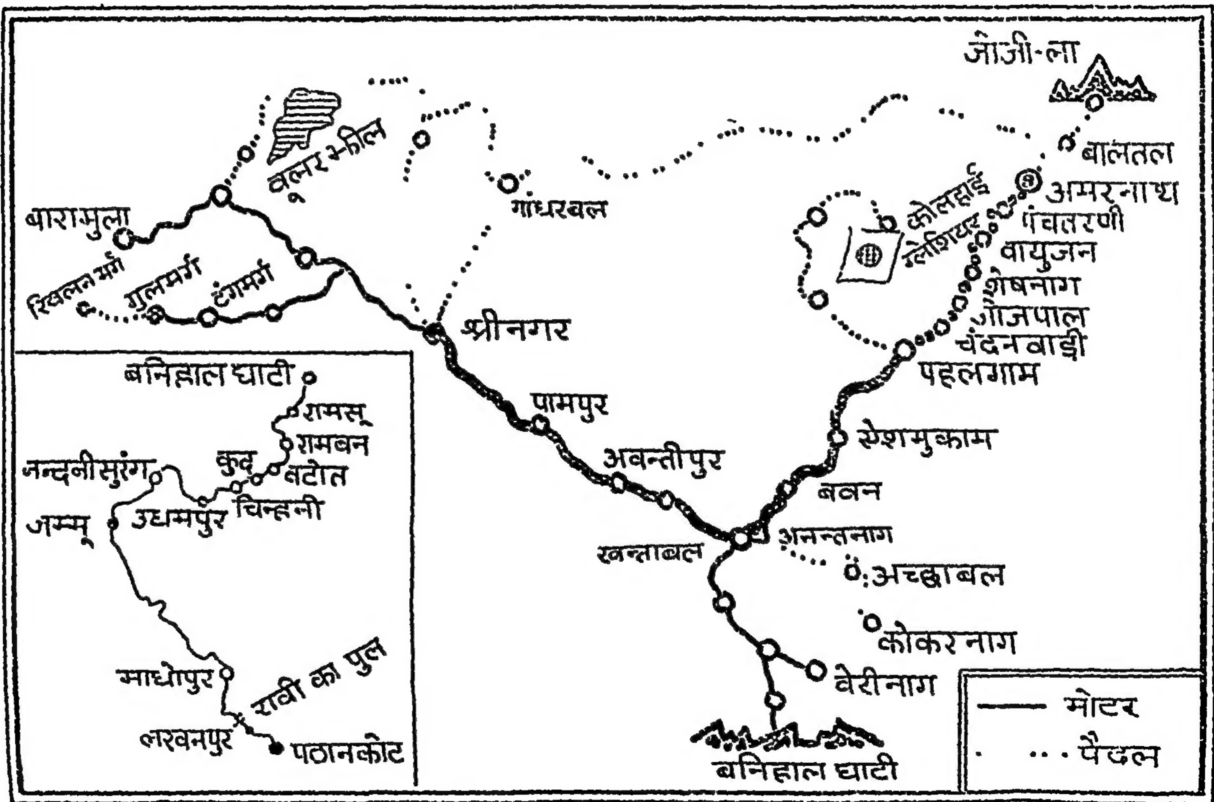
६. रीजनल टूरिस्ट आफीसर,
१८ए, माउंट रोड,
मद्रास

७. टूरिस्ट रिसेप्शन आफीसर,
गवर्नमेण्ट ऑव इंडिया, टूरिस्ट आफिस,
वंड, श्रीनगर

८. टूरिस्ट इन्फार्मेशन आफीसर,
माल रोड, आगरा

९. टूरिस्ट इफार्मेशन आफीसर,
१५ वी, माल,
बनारस केंट

अमरनाथ-यात्रा-पथ



जोजी-ला
बालतल
अमरनाथ
पंचतरणी
कोलहाई
ग्लेशियर
वायुजन
शेषनाग
जोजपाल
चंदनवाड़ी
पहलगाम
वूलर झील
गांधरबल
बारामुला
खिलनमर्ग
गुलमर्ग
टंगमर्ग
श्रीनगर
पामपुर
अवन्तीपुर
ऐशमुकाम
बवन
अनन्तनाग
खन्नाबल
अच्छाबल
कोकरनाग
वेरीनाग
बनिहाल घाटी
मोटर
पैदल
बनिहाल घाटी
रामसू
रामबन
बटोत
कुद
नन्दनीसुरंग
चिन्हनी
जम्मू
उधमपुर
माधोपुर
रावी का पुल
लखनपुर
पठानकोट